श्री राधासर्वेश्वरो विजयते

श्री निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

सुन सखि !
प्रेम नगर की बात

स्वामी श्री करुण दास जी

श्री राधासर्वेश्वरो विजयते

श्री निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

परम कृपालवे श्रीसद्गुरु भगवते नमो नमः

पू० सद्गुरुदेव श्री करुण दास जी महाराज
द्वारा 'सेवा सुख' पत्रिका में दिये लेखों का संग्रह

सुन सखि !
प्रेम नगर की बात

संपादक – किशोरी शरण

प्रकाशक –

राधा कृष्ण परिवार

भक्ति धाम कालोनी, आन्यौर परिक्रमा मार्ग

गोवर्धन, मथुरा – 281502

(उत्तर प्रदेश)

email-**info@radhakrishanparivar.com**

website-**www.radhakrishanparivar.com**

प्रकाशन तिथि –

जनवरी 2016

प्रतियाँ – 3000

न्यौछावर – 60 रूपये

मुद्रक –

प्रमोद प्रिन्टर्स

मसानी तिराहा,

वृन्दावन रोड, मथुरा

(उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना

पूज्य श्री महाराज जी (पूज्य श्री करुण दास जी) द्वारा अनेक विषयों पर लिखे लेख **राधा कृष्ण परिवार** द्वारा प्रकाशित '**सेवा सुख**' मासिक पत्रिका में प्रतिमाह छपते हैं। लेखों की भाषा व शैली बिल्कुल सरल होती है। लेख लिखते समय पूज्य श्री जनसाधारण को ध्यान में रखते हुए गूढ़ तथ्यों, गम्भीर भावों व तत्त्व रहस्यों को बड़ी सरलता से समझाते हैं। 'सेवा सुख' पत्रिका के श्रद्धालु पाठकगण पढ़कर बहुत सराहना करते हैं।

मेरे मन में आया कि क्यों न इन बहुमूल्य उपदेशों का पृथक रूप से प्रकाशन हो। ये उपदेश यदि पुस्तकाकार रूप में साधकों के सन्मुख प्रस्तुत किये जायें तो साधक जगत का बहुत बड़ा उपकार होगा।

इसके लिये पूज्य श्री से प्रार्थना की गई तो आपने सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी। परिणामस्वरूप समस्त लेख दो खण्डों में आपके सन्मुख प्रस्तुत हैं।

प्रथम खण्ड **सुन सखि! प्रेम नगर की बात**, द्वितीय खण्ड **बिखरे सुमन।** प्रथम खण्ड जो इस समय आपके हाथ में हैं, में पूज्य श्री महाराज जी द्वारा प्रेम तत्त्व व वृन्दावन योगपीठ का बड़ा ही सुन्दर एवं मार्मिक विवेचन हुआ है। द्वितीय खण्ड पूज्य श्री महाराज जी द्वारा अनेक विषयों पर लिखे लेखों का संग्रह है।

इन दोनों ग्रन्थों से साधकगण दुर्लभ लाभ प्राप्त करेंगे।

ऐसी मैं आशा करता हूँ।

आपकी सेवा में

सम्पादक

– किशोरी शरण

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मुक्ति से भी आगे है 'भगवत्प्रेम'	1
2.	ज्ञान और भक्ति	7
3.	ब्रह्मसुख भोगी श्रीजनक जी का भगवत्प्रेम	15
4.	ज्ञान की अधिष्ठात्री ब्रह्मविद्या का तप	20
5.	मैं भक्ति हूँ	23
6.	श्रीकृष्ण अवतार का हेतु-प्रेम	27
7.	प्रेम की घनीभूत मूर्ति-'श्रीराधा'	34
8.	मैं चिदानंदघन ब्रजभूमि हूँ	39
9.	श्रीराधाकृष्ण की अष्टयाम सेवा का चिंतन	43
10.	सर्वोपरि श्री वृंदावन धाम	49
11.	सुन सखि! प्रेम नगर की बात	54
12.	पराभक्ति (भगवत्प्रेम) प्राप्ति का उपाय	123

मुक्ति से भी आगे है 'भगवत्प्रेम'

जीव मात्र की ये कामना है कि मैं कभी दुःखी न रहूँ, सदा सुखी रहूँ। मैं दुःखी न रहूँ, यही है मुक्ति की कामना। लेकिन इससे आगे भी जीव की कामना है, वो है मैं सदा सुखी रहूँ। जैसे जेल की सजा काट रहे कैदी की दो कामनायें होती हैं। पहली यह कि मैं जेल के दुःखों से मुक्त हो जाऊँ। दूसरी यह कि मैं अपने घर जाकर सुखी हो जाऊँ, क्योंकि केवल जेल से छूटने से जेल के दुःख तो समाप्त हो जाते हैं पर सुख की प्राप्ति नहीं होती। वो तो अपने घर जाकर ही होती है। जेल से छूटने के बाद और घर पहुँचने से पहले की जो स्थिति है, वही कैवल्य मुक्ति की स्थिति है, जहाँ पर न जेल (माया) का दुःख है और न अपने घर (भगवद्धाम) का सुख है। केवल जेल के दुःख छूटने से शान्ति की अनुभूति होती है।

यद्यपि जीव मात्र की कामना दुःख से छूटकर सुख पाना ही है, फिर भी कई बार यह देखने में आता है कि कई लोग कहते हैं, भले ही हमको सुख न मिले पर दुःख से बचे रहें। चाहे हमारी प्रशंसा न हो पर कभी हमारी निन्दा न हो। चाहे संतान सुख न दे, पर हमें दुःख कभी न दे। देखने में लगता है कि इनको सुख, प्रशंसा व संतान से सुख की कामना नहीं है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। कामना तो सुख की है, पर गौण है। दुःख से छूटने की कामना मुख्य है। कुछ लोगों में दुःख से छूटने की कामना प्रबल होती है और कुछ लोगों में सुख पाने की। इसी प्रकार भगवद् आराधना करनेवाले भी कुछ लोग माया जनित दुःख से बचने के लिये आराधना करते हैं तो कुछ लोग भगवद्सुख पाने के लिये आराधना करते हैं।

पहली प्रकार के लोगों को दुःख का भय है, जिससे वह बचना चाहते हैं। दूसरी प्रकार के लोगों को भगवदीय सुख का लोभ है, जिसको वह प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिये पहली प्रकार के साधकों को केवल भय(माया) से मुक्ति मिलती है। ऐसे साधक निराकार ब्रह्म में ऐकी भाव(अभेद भाव) से लीन हो जाते हैं। इससे विपरीत जो, भगवदीय सुख

प्रेमी भक्तों का लक्ष्य
सगुण साकार भगवद् प्रेम राज्य
प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमानन्द की अनुभूति
आनन्द का घर
बन्धन, मुक्ति से परे, निज घर श्यामा-श्याम

↑

ज्ञानियों का लक्ष्य
मुक्ति (कैवल्य मोक्ष)
आत्मा का निर्गुण, निराकार ब्रह्म में लीन होकर
आत्म शान्ति लाभ
एक रस शान्ति का घर
बन्धन से मुक्ति

↑

अज्ञानियों का लक्ष्य
माया का राज्य
दु:खों से मिश्रित क्षणिक सुख (झूठा सुख)
दु:खों का घर
बन्धन (जेल)

के लोभी हैं उन्हें भला कैवल्य मुक्ति कहाँ संतोष दे सकती है। वे भगवान् में अभिन्न भाव से लीन न होकर भक्ति(द्वैत) भाव से उनके साथ रहकर प्रेमानन्दमयी सेवा सुख का लाभ लेते हैं। प्रेमी भक्त कहते हैं-

अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहहुँ निर्वाण,
जन्म-जन्म रति राम पद यह वरदान न आन ।

न हमें सांसारिक सम्पत्ति(अर्थ) चाहिये, न ही धर्म और उसका फल स्वर्ग आदि लोक। यहाँ तक कि हमें मुक्ति(निर्वाण) भी नहीं चाहिये। यदि चाहते हैं तो केवल आपके चरणों में रति(प्रेम)। इसके लिये हमारे बार-बार जन्म ही क्यों न हो! आपके चरणों के प्रेम के सिवा हम कुछ भी नहीं चाहते।

जो केवल दुःखों से मुक्ति चाहते हैं, उनके लिये ज्ञान मार्ग का शास्त्र प्रतिपादन करते हैं। लेकिन जो भगवदीय सुख के लोभी हैं, भगवत्प्रेमी हैं, उनके लिये शास्त्र भक्ति मार्ग का उपदेश करते हैं। ज्ञान का मार्ग बुद्धि (विचार) प्रधान होता है और भक्ति का मार्ग हृदय (प्रेम) प्रधान होता है। बुद्धि में ज्ञान होता है, ज्ञान से मुक्ति होती है। हृदय में प्रेम होता है और प्रेम से साकार भगवान् की प्राप्ति होती है।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रकट होंहि मैं जाना ।

मिलहीं न रघुपति बिन अनुरागा ।

मोहन प्रेम बिना नहीं मिलता, चाहे कर लो कोटि उपाय ।

भजन साधन के द्वारा निर्मल मन वाला होकर जीव मुक्ति तो प्राप्त कर सकता है, परन्तु सगुण साकार भगवान् की प्राप्ति नहीं कर सकता। वह तो केवल प्रेमी भक्तों को ही प्राप्त होते हैं। ज्ञानियों के ब्रह्म निर्गुण, निराकार होते हैं तो प्रेमी भक्तों के सगुण, साकार। ज्ञान की साधना बुद्धि प्रधान होने से अद्वैत भाव से ब्रह्म (आत्म) चिन्तन भृकुटि के मध्य किया जाता है। लेकिन प्रेमी भक्तों के साकार भगवान् भृकुटि के मध्य नहीं बल्कि हृदय में होते हैं। इसलिये हनुमान जी ने माथा चीर के नहीं बल्कि हृदय चीरकर साकार राम जी के दर्शन सभी को कराये थे। हृद्य में ही क्यों? क्योंकि भगवान् का साकार रूप में प्रकट होने का कारण प्रेम होता है और वह प्रेम हृद्य में होता है, न कि मस्तिष्क में। भगवान् को ज्ञान नहीं प्रकट कर सकता। यह शक्ति तो केवल प्रेम में ही है, इसलिये ज्ञान से आगे प्रेमाभक्ति है।

योगी पावे योग से, ज्ञानी लेह विचार ।
नानक पावे भक्ति से, जाको प्रेम आधार ।।

ज्ञानी ज्ञान की चर्म स्थिति पर पहुँचकर ब्रह्म को 'मैं' रूप में अनुभव करता है। उसका ब्रह्म कोई दूसरा नहीं बल्कि आत्म रूप ही होता है। ज्ञानी की पूर्णता अपने आप को पाने में है, जानने में है। वह अपने सिवा कुछ भी अनुभव नहीं करता। सर्वत्र 'मैं' का ही विस्तार अनुभव करता है। न सांसारिक दुःख, न सुख, केवल आत्मानुभूति। सोऽहं

(सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा), अहम् ब्रह्मास्मि्। ब्रह्म और आत्मा का अभेद ही ज्ञानी की अंतिम अनुभूति है। प्रेमी भक्त को इससे भी आगे की अनुभूति होती है। ज्ञानी की तरह उसका ब्रह्म 'मैं' के रूप में प्राप्त नहीं होता बल्कि 'मेरे' के रूप में प्राप्त होता है। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' भगवान् मेरे हैं। यह द्वैत भाव ही प्रेम है। 'मैं भगवान् हूँ', ये है ज्ञान। 'भगवान् मेरे हैं', ये है प्रेम। ज्ञान यदि शान्त समुद्र है तो प्रेम उच्छलित समुद्र है, जिसमें नई-नई प्रेम की तरंगें उठती रहती हैं। ज्ञान एक रस है तो प्रेम अनन्त रस। ज्ञान यदि स्थिर है तो प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान। ज्ञान की साधना में वैराग्य की मुख्यता है और प्रेम की साधना में भावुकता व हृदय की कोमलता मुख्य है। ज्ञानी को केवल मुक्ति ही प्राप्त होती है लेकिन प्रेमी भक्त को मुक्ति के साथ-साथ भगवत्प्रेम भी प्राप्त होता है।

दो व्यक्ति थे, उनमें एक अनाथ था। उसके पास मेरा कहने के लिये परिवार में कोई भी नहीं था, वह अकेला ही रहता था। दूसरे के पास पूरा परिवार था। उसके माता-पिता और परिवार के सभी लोग उससे बहुत प्रेम करते थे, वह भी सबसे बहुत प्रेम करता था। उसके पास बहुत बड़ा सुखप्रद वातानुकुलित महल था। महल में किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं था, सुख ही सुख थे। उस महल में एक ऐसा भी कक्ष था, जिसमें धूप व गर्मी से परेशान थके-मांदे कोई भी आकर ठहर सकते थे। उस कक्ष का द्वार बाहर की तरफ से खुला था, अन्दर की तरफ से नहीं। वह कक्ष महल से सटा हुआ तो था, पर था महल से अलग ही। दोनों उस महल से दूर, परदेश में रहते थें।

उन दोनों के ऊपर कोई न कोई दुःख संकट आया ही रहता था। एक दुःख जाता उससे पहले दूसरा आ जाता, दूसरा जाता उससे पहले तीसरा आ जाता। इस प्रकार दोनों बहुत परेशान रहते। उसी समय उन दोनों में से, जिसके पास माता-पिता व परिवार था, उसको अपने माता-पिता व परिवार के प्रेम की याद आयी। वह उनकी याद करके व्याकुल हो गया और उनको मिलने के लिये तैयारी करने लगा। लेकिन दूसरा दुःख से छूटने की तैयारी तो करता रहा लेकिन मिले किससे, उसका तो कोई है ही नहीं। दोनों ने वह स्थान छोड़ दिया। उस स्थान को

छोड़ते ही वहाँ के सारे दुःख संकट छूट गये। एक तो पहुँचा अपने माता-पिता के पास उस महल में जिसमें सुख ही सुख थे, एक भी दुख नहीं था और दूसरा पहुँचा महल के उस कक्ष में जो गर्मी व तेज धूप से तप्त लोगों के विश्राम के लिये था। उस कक्ष में किसी भी प्रकार का कोई भी दुःख नहीं था, एकदम शान्त। वहाँ पहुँचकर उसका मन बिल्कुल शान्त हो गया और वह गहरी नींद में सो गया। किसी भी प्रकार का कोई दुःख नहीं रहा और पहले वाला अपने माता-पिता व पूरे परिवार से मिला। उस महल में इतना सुख मिला कि खुशी के मारे नींद भी कोसों दूर चली गई। अपने परिवार के प्रेम सुख में प्रतिक्षण वर्धमान आनन्द का अनुभव करने लगा। दुःखों की कौन कहे, उनकी याद तक नहीं रही।

अब आप समझ गये होंगे जो मैं समझाना चाहता हूँ। इस संसार में भी दो प्रकार के व्यक्ति हैं। एक वो जो भगवान् को अपना मानते हैं, उनको भक्त या प्रेमी कहते हैं। दूसरे वह जो अपनी आत्मा को ही भगवान्(सोऽहं) मानते हैं। आत्मा सो परमात्मा, ऐसा कहते हैं। अहं ब्रह्मास्मि, मैं ही ब्रह्म हूँ। वो तो परमात्मा को अपने से अलग कोई दूसरा मानते ही नहीं। जब आत्मा ही सब कुछ है तो उससे अलग कोई ओर कौन होगा? केवल मैं ही मैं। जब कोई दूसरा नहीं, केवल एक मात्र मैं हूँ, तो हो गया ना अनाथ की तरह। अब किससे मिलेगा? अपना कहने के लिये अब बचा ही कौन जिससे मिलेगा?

उस महल में पहुँच कर दोनों के दुःख मिट गये अर्थात् माया के उस पार दोनों पहुँच गये, जहाँ किसी भी प्रकार का कोई दुःख नहीं। दुःखों की निवृत्ति अर्थात् माया से मुक्ति दोनों की एक समान हुई, कम या अधिक नहीं। दुःखों से मुक्ति भले ही दोनों की एक समान हुई लेकिन प्राप्त स्थिति में बहुत अन्तर है। एक की तो केवल दुःखों से मुक्ति हुई परन्तु दूसरे को मुक्ति के साथ-साथ भगवत् प्रेम भी प्राप्त हुआ। जिस प्रकार अपनों से मिलकर वह आनन्दित हुआ, उसको सोना भी अच्छा नहीं लगा। नींद भी कोसों दूर भाग गई। इसी प्रकार साकार भगवान् की प्राप्ति होने पर मुक्ति(नींद) भी अच्छी नहीं लगती।

ऐसा नहीं मानना कि मरनेके बाद ही आत्मा मुक्ति व भगवत् प्रेम

को प्राप्त होती है, जीते जी नहीं। जीव यदि गुरू और गोविन्द की कृपा आश्रित होकर पुरूषार्थ करे तो अवश्य ही ऐसी स्थिति जीते जी हो जाती है। जो जीते जी मुक्त नहीं वह देहान्त के बाद भी मुक्त नहीं हो सकता। यहाँ यदि भगवत्प्रेम को नहीं पा सका तो मरने के बाद भी नहीं प्राप्त कर सकता। हाँ, कई बार ऐसा हो जाता है कि जीव मृत्यु के समय ऐसी उच्च स्थिति को प्राप्त कर लेता है, लेकिन उसका भी कारण प्रबल पुरूषार्थ व कृपा ही होता है। मुक्ति प्राप्ति के लिये पुरूषार्थ की प्रधानता व भगवत् प्रेम प्राप्ति के लिये कृपा की प्रधानता होती है। मुक्ति व प्रेम दोनों में पुरूषार्थ व कृपा की न्यूनाधिक आवश्यकता तो रहती ही है।

भगती रस के सामने, ब्रह्मानँद तुछ होय।
कोटिगुना करि ब्रह्मसुख, भगती सम नहिं सोय।।
ज्ञान मुक्ति क्रिय भुक्ति दे, भगती न देय कोइ।
कोटि साधना होय पै, तोऊ दुर्लभ होइ।।
कृष्ण भक्ति रस सों मिले, जहाँ मति सराबोर।
वेगहिं जाय खरीद लै, मिले न जन्म करोर।।
मुक्तजीव के भाग पै, मोही दुःख अपार।
बद्धजीव सौभाग पै, नहिं कछु सोच विचार।।
मुक्त आत्मा को कबहु, मिले न भगतीयोग।
बद्ध आत्मा का कबहु, ह्वै सकै सुसंयोग।।
भुक्ति मुक्तिकी कामना,जब लगि हियमें होय।
तब लगि प्रेमाभगति को, परस सकै नहिं कोय।।
सब साधन को फल यहै, हरि की भगती होय।
सोई भगती कृपा बिन, कर न सकै जन कोय।।
दीन कृपाश्रित भगत का, भगती में अधिकार।
संत चरण रज सीस पर, करुण दास लै धार।।

ज्ञान और भक्ति

मुक्ति का साधन ज्ञान है और भगवत्प्रेम का साधन भक्ति। ज्ञान और भक्ति दानों में समानता भी है और अन्तर भी। श्रीरामचरित- मानस जी के उत्तरकाण्ड में गरुड़ जी व कागभुशुण्डि जी के संवाद रूप में ज्ञान और भक्ति का बड़ा ही सुन्दर विवेचन हुआ है। गरुड़ जी कागभुशुण्डि जी से पूछते हैं कि हे प्रभो! संत, मुनि, वेद और पुराण ज्ञान के समान कुछ भी दुर्लभ नहीं मानते, फिर आपने लोमश ऋषि जी के कहने पर भी भक्ति के समान ज्ञान का आदर क्यों नहीं किया? हे कृपानिधान ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है? सो सब मुझको कहिये।

कहहिं संत, मुनि, वेद, पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।
सोई मुनि तुम सन कहेउ गोसाईं, नहिं आदरेहु भगति की नाईं।
ज्ञानहि, भगतहि अन्तर केता, सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।

इस पर कागभुशुण्डि जी बोले- 'ज्ञान और भक्ति' में समानता भी है और अन्तर भी। समानता तो यह है, कि दोनों ही संसार जनित दुःख को हर लेते हैं।

भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।

दुःख की समाप्ति दोनों ही एक समान करते हैं। दोनों ही माया जनित दुःखों को सदा के लिये समाप्त कर जीव को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर कृतार्थ कर देते हैं। इसलिये ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है। अब दोनों का अन्तर बताते हैं।

नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर, सावधान सोउ सुनु विहंगवर।

हे पक्षी श्रेष्ठ गरुड़ जी! दोनों में मुनीश्वर कुछ अन्तर भी बताते हैं, सावधान होकर सुनो। नारि के रूप पर नारि कभी मोहित नहीं होती। भक्ति और माया दोनों ही नारि जाति की हैं। इसलिये माया कभी भी भक्ति की तरफ नहीं देखती अर्थात् भक्ति में माया कभी विघ्न नहीं डालती। ज्ञान पुरूष जाति का होने से माया ज्ञान पर मोहित हो जाती है अर्थात् ज्ञानी को माया मोहित कर लेती है और फिर भगवान् को भक्ति विशेष प्यारी है।

मोह न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह रीति अनूपा ।
माया भगति सुनहु तुम दोउ, नारि वर्ग जानहु सब कोउ ।
पुनि रघुवीरहि भगति प्यारी ।

उपमा रहित और उपाधि रहित भक्ति जिसके हृदय में सदैव बिना बाधा के वास करती है उसको देखकर माया लज्जित हो जाती है, उस पर अपनी प्रभुता नहीं चला सकती।

राम भगति निरूपम निरूपाधी, बसहिं जासु उर सदा अभादि ।
तेहि बिलोकि माया संकुचाहि,करि न सकई कछु निज प्रभुताई ।

भक्ति की ऐसी महिमा विचारकर जो ज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब गुणों की खान भक्ति को ही माँगते हैं। आगे कहते हैं यह भक्ति का रहस्य कृपा से ही समझ में आ सकता है अन्यथा यह मन बुद्धि से परे अचिन्त्य विषय है। हे गरुड़ जी! ज्ञान और भक्ति का ओर भी अन्तर सुनिये, जिसे सुनकर व समझकर भगवान् के चरणों में प्रेमाभक्ति हो जाती है। अब कागभुशुण्डि जी अन्तर के रूप में ज्ञान मार्ग की कठिनाईयों व भक्ति मार्ग की सुगमता का वर्णन करते हैं।

यह जीव ईश्वर का अंश है। इसलिये यह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है। यह माया के वशीभूत होकर अपने सहज स्वरूप को भूल गया है, देहात्म बुद्धि हो गई है। यह अपने आप को अविनाशी, चेतन, निर्मल और सुख स्वरूप आत्मा न मानकर जड़ देह मानने लग गया है। यह पाञ्चभौतिक शरीर में इतना आसक्त हो गया कि अपने को शरीर से अलग अनुभव नहीं कर पाता। जड़(शरीर) और चेतन(आत्मा) में गाँठ पड़ गई। यद्यपि यह गाँठ भी भ्रम ही है, वास्तविक नहीं। मैं शरीर हूँ इसी भ्रम के कारण यह नाना प्रकार के दुःख भोग रहा है, पाप पुण्य के पचड़े में पड़ा है। अपने आप को कभी सुखी कभी दुःखी अनुभव करने लगा है। जबकि सुख दुःख दोनों ही माया का झूठा पसारा है। वेद पुराणों में इस गाँठ को छुड़ाने के बहुत उपाय बताये हैं, परन्तु यह गाँठ छूटती नहीं है अधिकाधिक उलझती ही जाती है। अज्ञान रूपी अंधकार की अधिकता से यह गाँठ दिख नहीं पड़ती है

अर्थात् समझ में नहीं आती, फिर छूटे कैसे? जब तक छूटती नहीं तब तक यह जीव दुःखी ही रहेगा, सुखी नहीं हो सकता। यदि ईश्वर की कृपा से ऐसा संयोग बन जाये तो शायद छूट जाये।

भगवान् की कृपा से सात्विक श्रद्धा रूपी गाय यदि जीव के हृदय में आकर बसे और जप, तप, व्रत, नियम आदि उत्तम धर्माचरण रूपी घास को चरे, फिर शुद्ध भाव रूपी बछड़े को पाकर वह परमार्थ रूपी दूध उतारे। निवृत्ति (विषयों से हटना) रस्सी (नेवना) होवे, विश्वास बर्तन हो और वश में रहने वाला मन ही दूध दोहने वाला ग्वाला हो। इस प्रकार परमार्थ रूपी दूध को दोहे, फिर निष्कामता की अग्नि में उसे उबाले, तब संतोष और क्षमा रूपी हवा से ठण्डा करे और संयम तथा धैर्य रूपी जामन देकर उसे जमाए।

फिर प्रसन्नता रूपी मटकी में विचार रूपी मथानी को दम रूपी खम्बे से बाँधकर सत्य और मीठी वाणी रूपी डोरी से उसे मथे और अत्यन्त पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन उसमें से निकाल ले, फिर योग रूपी अग्नि प्रकट कर अच्छे-बुरे कर्म रूप ईंधन लगा दे। जब ममता रूपी मैल जल जाये तब शुद्ध बुद्धि रूपी घी को शीतल करे, फिर शुद्ध बुद्धि रूपी घी को चित्त रूपी दीपक में डालकर सम दृष्टि रूपी दीवट (दीपक रखने की जगह) बनाकर उस पर रखे। इसके बाद तीनों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) और तीनों गुण (सत्, रज, तम) रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रूई निकालकर सुन्दर बत्ती बनाए। इस प्रकार तेज पुञ्ज ज्ञान का दीपक जलाए, जिसके पास आते ही मद आदि समस्त पतंगे जल जाऐं। सोऽहमास्मि (वह ब्रह्म मैं ही हूँ) अहं ब्रह्मास्मि यह जो अखण्ड वृत्ति है यही उस दीपक की तीक्ष्ण लौ है। मैं ब्रह्म हूँ, इस अनुभूति (आत्मानुभूति) के सुख का प्रकाश फैलता है तो संसार के मूल रूप भेद और भ्रम का नाश हो जाता है और अविद्या (माया) का परिवार मोह आदि का घोर अंधकार दूर हो जाता है। तब वही शुद्ध बुद्धि, ज्ञान रूपी प्रकाश को पाकर हृदय रूपी घर में बैठकर उस जड़ (शरीर) चेतन (आत्मा) की गाँठ को खोलती है, जिसके खुलते ही यह जीव माया बन्धन से छुटकारा पाकर कृतार्थ हो जाता है।

हे गरुड़ जी! इस गाँठ को खोलते हुए जानकर माया अनेक विघ्न डालती है। यह माया अनेक ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है जो आकर बुद्धि को लालच दिखाती है। दाव पेंच और छल बल से ज्ञान रूपी दीपक के पास पहुँचकर आँचल की वायु से उसे बुझा देती है। यदि बुद्धि चतुर समझदार हुई तो ऋद्धि- सिद्धियों को विघ्न रूप जानकर उसकी ओर आकर्षित नहीं होती। यदि लालच में बुद्धि न फँसे तो फिर देवता विघ्न करते हैं। इन्द्रियों और देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता क्योंकि उनको विषय भोग ही सदा प्रिय लगते हैं। इन्द्रियों में देवताओं का वास होता है, जब वह विषय रूपी वायु को आते देखते हैं तो झट से इन्द्रियों के द्वार खोल देते हैं अर्थात् इन्द्रियों को उत्तेजित कर देते हैं। ज्यों ही विषय रूपी वायु हृदय रूपी घर में पहुँचती है त्यों ही ज्ञान का दीपक बुझा देती है। जड़ चेतन की गाँठ अभी खुल भी नहीं पाई, इतने में उजाला मिट जाता है, अज्ञान रूपी अंधकार छा जाता है। विषय रूपी वायु से बुद्धि व्याकुल हो जाती है, जब बुद्धि विषय में फंस गई अब दीपक दोबारा कौन जलाए, तब जीव अनेकों क्लेश पाता है।

हे पक्षीराज गरुड़! प्रभु की माया बड़ी दुस्तर है, इसे सहज ही में नहीं पार किया जा सकता। ज्ञान समझने में कठिन व साधन में भी कठिन है, संयोगवश सिद्धि भी हो जाए तो फिर अनेकों विघ्न बााधाएँ हैं। ज्ञान का मार्ग कृपाण की धारा की तरह बहुत पतला (सँकरा) है जिस पर पाँव रखकर सम्भलना बहुत कठिन है, गिरते देर नहीं लगती। जो ज्ञानी बाधाओं से भरे इस कठिन मार्ग पर चलकर यदि निबाह ले जाता है तो वही मुक्ति पाता है। ऐसी दुर्लभ मुक्ति भगवान् की भक्ति करने वाले को न चाहने पर भी अनायास मिल जाती है।

कागभुशुण्डि जी ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करके अब भक्ति मार्ग की सुगमता का वर्णन करते हुए कहते हैं-हे गरुड़ जी! भक्ति से बिना विशेष परिश्रम किए जड़-चेतन की गाँठ भगवत् कृपा से सहज ही में खुल जाती है। अविद्या माया का नाश हो जाता है। जिसे ऐसी सुगम और सुख देने वाली हरि भक्ति न सुहाए, ऐसा मूर्ख कौन होगा। भक्ति मुक्ति से भी आगे भगवत्प्रेम प्रदान करती है।

अस विचारि हरि भगत सयाने, मुक्ति निरादर भगती लुभाने ।

ऐसा विचार कर भक्त मुक्ति (ज्ञान) का निरादर कर हरिभक्ति (भगवत्प्रेम) के लिये कामना करते हैं, मैंने भी यही किया क्योंकि भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठ है। हे गरुड़ जी! मैंने ज्ञान का सिद्धान्त विस्तार से समझाकर कहा, अब भक्ति रूपी मणि की महिमा भी विस्तार से सुनिये –

कहउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई, सुनहु भगति मणि कै प्रभुताई ।

यहाँ पर इस प्रसंग में कागभुशुण्डि जी ने ज्ञान को दीपक की उपमा दी है और भक्ति को मणि की, ऐसा क्यों? इसका भी कारण है। यद्यपि मणि और दीपक दोनों ही प्रकाश देते हैं, ये दोनों में समानता है। ज्ञान रूपी दीपक भी, हृदय रूपी घर में अज्ञान का अंधकार मिटाकर सत्य को प्रकाशित करता है और भक्ति रूपी मणि भी हृदय को प्रकाशित करती है, फिर भी दोनों में अन्तर है। इस अन्तर को भी कागभुशुण्डि जी गरुड़ को समझाते हुए कहते हैं –

राम भक्ति चिन्तामनि सुन्दर, बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।
परम प्रकास रूप दिन राती, नहीं कछु चाहिये दिया घृत बाती ।

हे गरुड़ जी! जिसके हृदय में राम भक्ति रूपी चिन्तामणि बसती है, वह दिन–रात प्रकाशित रहता है। ज्ञान रूपी दीपक की तरह भक्ति रूपी मणि को दीया, घी, बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। लोभ रूपी वायु भी उस मणि को नहीं बुझा सकती।

कागभुशुण्डि जी ज्ञान को दीपक की उपमा व भक्ति को मणि की उपमा देकर भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। दीपक पर पानी पड़ते ही दीपक बुझ जाता है, लेकिन मणि को चाहे पानी में डुबा दो वह पानी में भी प्रकाश देती रहेगी। दीपक को तो वायु भी बुझा देती है, लेकिन मणि तूफान में भी ज्यों की त्यों प्रकाशित रहती है। घी समाप्त होते ही दीपक बुझ जाता है, लेकिन मणि को जलने के लिये घी व बत्ती की आवश्यकता नहीं पड़ती। दीपक को जलते रहने में अनेकों विघ्न बाधाएँ होती हैं, लेकिन मणि के जलते रहने में कोई विघ्न बाधा नहीं आती। भुशुण्डि जी के कहने का भाव है कि ज्ञान मार्ग में विघ्न ही विघ्न हैं, लेकिन भक्ति में कोई विघ्न नहीं है। ऐसा जानकर ही चतुर लोग

भक्ति रूपी मणि के लिए यतन करते हैं।

हम पहले ही कह चुके हैं भक्ति (प्रेम) की प्राप्ति में कृपा की प्रधानता है। इसमें पुरूषार्थ गौण है। इसलिए भुशुण्डि जी कहते हैं –

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई, राम कृपा बिन नहि कोउ लहई।

यद्यपि यह भक्ति रूपी मणि जगत में प्रत्यक्ष है, फिर भी बिना राम कृपा के प्राप्त नहीं होती। राम कृपा से भक्ति प्राप्ति का क्रम इस प्रकार है – राम कृपा से संत मिलते हैं, संतों का संग करने से कथा सुनने को मिलती है। इसके बाद हृदय में भक्ति अपने आप आ जाती है – **बिन हरि कृपा मिले नहीं संता।**

बिन सत्संग न हरि कथा, तेहि बिन मोह नहीं भाग ।
मोह गये बिन राम पद, होहिं न दृढ़ अनुराग ।।

मणि, खान से निकलती है और खानें पर्वतों में होती हैं। खान को खोदकर ही मणि प्राप्त होती है। इसलिए आगे कहते हैं – वेद, पुराण पवित्र पर्वत हैं, श्रीहरि कथाएँ ही उसमें खानें हैं। संतजन उन खानों के रहस्य जानने वाले हैं। साधक की श्रद्धा भाव रखने वाली बुद्धि ही खोदने वाली कुदाल है, जो भाव से खोजता है वह सब सुखों की खान भक्ति रूपी मणि को प्राप्त कर लेता है। कहने का भाव यह है कि वेद, पुराणों के ज्ञाता व हरि कथा के मर्मी संतों का श्रद्धा भावपूर्ण बुद्धि द्वारा संग करो और उनसे हरि कथा सुनो। इतने मात्र से भक्ति हृदय में आ जाएगी। इसके लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ेगा, करना पड़ेगा केवल भक्त संतों का संग। संत, कथा सुनाकर जीव को भक्ति का पात्र बनाकर उनमें भक्ति का बीज डाल देते हैं, समय पाकर वह भक्ति का पौधा फलने – फूलने लगता है और फिर उसमें प्रेमानन्द का फल लगता है। तभी तो मीरा जी ने कहा –

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
संतन ढिंग बैठ बैठ लोक लाज खोई,
अंसुअन जल सींच – सींच प्रेम बेल बोई,
अब तो बेल फैल गई आनन्द फल होई ।।

इसलिए कागभुशुण्डि जी कहते हैं – हे गरुड़ जी! सब साधनों का फल हरि – भक्ति है, लेकिन यह बिना संत कृपा के प्राप्त नहीं होती।

सब कर फल हरि भगति सुहाई, सो बिनु संत न काहु पाई ।।

ऐसा विचार कर जो संत संग करता है, उसी के लिए भक्ति सुलभ होती है।

अस विचारि जो कर सत्संगा, राम भगति तेहि सुलभ विहंगा ।

यहाँ पर इस अर्धाली में भक्ति को सुलभ बताया है क्योंकि यह संतों का संग करते – करते अपने आप हृदय में प्रकट हो जाती है। इससे पूर्व भुशुण्डि जी ज्ञान को एक बार नहीं बल्कि तीन बार कठिन कहकर अति दुर्लभ बताते हैं –

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक

ब्रह्मज्ञान की अपेक्षा प्रेमाभक्ति की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कागभुशुण्डि जी कहते हैं –

सिव अज सुक सनकादिक नारद,जे मुनि ब्रह्म विचार विसारद ।

सब कर मत खग नायक ऐहा, करिय राम पद पंकज नेहा ।

श्रुति पुराण सब ग्रंथ कहाहिं, रघुपति भगति बिना कछु नाहीं ।

महादेव जी, ब्रह्मा जी, शुकदेव जी, सनकादिक, नारदादि ओर भी जो ब्रह्मज्ञान में चतुर मुनि हैं, हे गरुड़ जी! सबका मत यही है कि श्रीराम जी के चरणों में प्रेम (भक्ति) करना चाहिए। वेद, पुराण और सब ग्रन्थों में कहा गया है कि भक्ति के बिना कहीं सुख नहीं है।

कागभुशुण्डि जी के वचन सुनकर और राम जी के चरणों में उनका प्रेम देखकर संदेह रहित होकर गरुड़ जी प्रेमपूर्वक बोले – रामभक्ति रस से सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतार्थ हो गया। राम जी के चरणों में मेरी प्रीति हो गई और माया से उत्पन्न सब विपत्ति चली गई।

सुनी रघुबीर भगति रस सानी ।

राम चरण नूतन रति भई, माया जनित विपति सब गई ।

माया जनित विपति सब गई का अर्थ है – माया से मुक्ति और राम

चरण नूतन रति भई का अर्थ है–सगुण साकार भगवान् राम का नित नया रहने वाला प्रेम। भक्त को मुक्ति और प्रेम दोनों प्राप्त होते हैं लेकिन ज्ञानी को केवल मुक्ति ही प्राप्त होती है, भगवत्प्रेम नहीं। प्रेम साकार से होता है, निराकार से नहीं। निराकार का तो केवल ज्ञान ही हो सकता है, उससे प्रेम नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रेमी (भक्त) के लिए भगवान् सगुण साकार हैं और ज्ञानी के लिए वही निर्गुण निराकार हैं। निराकार और साकार दो नहीं हैं, तत्वत: दोनों एक ही परमेश्वर के अनादि व अनन्त रूप हैं। जीव का जैसा भाव होता है परमात्मा की वैसी ही उसको अनुभूति होती है।

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ।

अनन्त जीवों के भाव भी अनन्त होते हैं, इसलिए भगवान् भी भाव के अनुसार अनन्त होते हैं–

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता,बहुविधि कहहिं सुनहिं सब संता ।

यदि कोई पूछे कि भगवान् के कितने रूप हैं तो हम यही कह सकते हैं कि जितनी आत्माएँ हैं उतने ही परमात्मा के रूप हैं, इसलिए जिसका जैसा भाव हो वह उसी भाव से भजन साधना करता रहे।

ज्ञानीको निज लीन करूँ,भक्त जनन को संग ।
एक आत्मसुख लेत है, एक प्रेम रस रंग ।।
एक शांत रस रूप है, एक प्रेम रस रूप ।
इक अद्वैत स्वरूप है, दूजो द्वैत अनूप ।।
ब्रह्मलीन इक होत है, दूजो लीला लीन ।
जनम मरण भव सिंधु ते, तरैं दोउ गुण तीन ।।
जीव ईश दोउ एक हैं, ज्ञान पंथ को सार ।
इकसम दोउ क्रीड़त सदा,भक्ति पंथ रति प्यार ।।
ज्ञान पंथ में मुख्य है, बुद्धि तर्क विचार ।
भगती में श्रद्धा हिये, रसिक संग अरु प्यार ।।
प्रबलबुद्धि हियरा कठिन,त्याग ज्ञान अनुकूल ।
मति श्रद्धा हिय सरसता, कर्म भक्ति को मूल ।।

ब्रह्मसुख भोगी श्रीजनक जी का भगवत्प्रेम

मिथिला नरेश महाराज जनक जी के विषय में यह बात जगत प्रसिद्ध है कि जनक जी जीवन मुक्त महापुरूष थे। सदा ब्रह्मसुख में निमग्न रहते थे। इस आत्मस्थिति में उनको देह तक का भी भान नहीं रहता था। देह में रहकर भी देह से अलग थे, इसलिए विदेहराज कहलाते थे। जागतिक सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो चुके थे। माया के आकर्षण से सदा के लिए छूट चुके थे। आप परमहंस शुकदेव आदि मुनीश्वरों के भी शिक्षा गुरु थे। जिस अवस्था में पहुँचकर आत्मा का परमात्मा से अभेद सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और माया की सत्ता सदा के लिए समाप्त हो जाती है। महाराज जनक जी उसी अवस्था अहं ब्रह्मास्मि (सोऽहम्) के भाव को प्राप्त महापुरुष थे। बड़े-बड़े योगी, ऋषि, मुनि, ज्ञानी व तपस्वी जिस मुक्ति की कामना करते हैं वह मुक्ति जनक जी को जीते-जी सहज प्राप्त थी।

ऐसे ब्रह्मसुख भोगी विदेहराज श्रीजनक जी जब पहली बार महामुनि विश्वामित्र के साथ आए श्रीराम जी और श्रीलक्ष्मण जी के दर्शन करते हैं तो उनके नेत्रों में जल भर आया। आनन्द के आँसू उमड़ पड़े और शरीर रोमांचित हो उठा। राम जी की मधुर-मनोहर आनन्दघन मूर्ति को देखकर विदेह (जनक) विशेष रूप से विदेह हो गए।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता ।
बारि बिलोचन पुलकित गाता ।।

मन को राम-प्रेम में मगन जानकर श्री जनक जी ने विवेक (ज्ञान) का आश्रय लेकर धीरज धारण किया। अपने सहज स्वरूप को सम्भालने की असफल कोशिश की।

प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिबेक धरि धीर ।
बोलेउ मुनि पद नाई सिर गद् गद् गिरा गम्भीर ।।

मुनि विश्वामित्र के चरणों में सिर झुकाकर गद्‌गद (प्रेम भरी) गम्भीर वाणी से कहा-हे नाथ! कहिये, ये दोनों सुन्दर बालक कौन हैं? ये मुनि-कुल के आभूषण हैं या किसी राजवंश के पालक? अथवा

जिसका वेदों ने 'नेति' कहकर गान किया है, कहीं वह ब्रह्म तो युगल – रूप धरकर नहीं आया है?

कहहू नाथ सुन्दर दोउ बालक।
मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहीं गावा।
उभय भेस धरि की सोइ आवा ।।

उपरोक्त दोहे में जो **गिरा गम्भीर** शब्द आया इसका अर्थ यही है कि जनक जी जो कहने वाले हैं वह गम्भीर (रहस्यमय गूढ़) वाणी है। वह साधारण अर्थ लिए नहीं है। वह गम्भीर वाणी क्या है? वह है – **ब्रह्म जो निगम नेति कहीं गावा। उभय भेस धरि की सोइ आवा ।।** यहाँ नेति शब्द ही अपने में बहुत बड़ा रहस्य छिपाए हुए है। यदि नेति शब्द को हटाकर अर्थ करें तो अर्थ होगा –

ब्रह्म जो निगम .... कहीं गावा। उभय भेस धरि की सोइ आवा ।।

जिसका वेदों ने गान किया है, कहीं वही ब्रह्म तो युगल (राम – लक्ष्मण) रूप धरकर नहीं आया। लेकिन वेदों ने जिस ब्रह्म का गान किया है, उस ब्रह्म का तो जनक जी को पूर्ण अनुभव है। उसका तो साक्षात्कर वह आत्मस्वरूप में कर चुके हैं और अहर्निश उसी में डूबे रहते हैं। उस ब्रह्म में तो कहीं आज तक यह साकार सुन्दर रूप नहीं दिखा और न ही कभी ऐसा सुख मिला जो इनके दर्शन से आज प्राप्त हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह सुख उस ब्रह्म – सुख से भी विलक्षण है, यह सुख उस ब्रह्म – सुख से भी बढ़कर है। इस सुख ने तो ब्रह्म – सुख (मुक्ति का सुख) को भी फीका कर दिया।

अब यहाँ **'नेति'** शब्द पर ध्यान दें – **'नेति'** का अर्थ है **'न इति'** अर्थात् समाप्ति नहीं, इससे आगे भी है। वेद ब्रह्म का गान करते – करते अन्त में 'नेति – नेति' कहकर मौन हो गए।

नेति – नेति कह वेद पुकारें ।

वेद पुकार के कहते हैं कि जितना हमने ब्रह्म का गान किया है उतना ही नहीं है, इससे आगे भी है। हम अपार का पार नहीं पा सकते।

इसलिए उसका 'नेति' कहकर मात्र संकेत ही कर सकते हैं।

परम ज्ञानी महाराज जनक जी विचार करने लगे –

ब्रह्म जो निगम नेति कहीं गावा । उभय भेस धरि की सोइ आवा ।।

वेदों (निगम) ने ब्रह्म के जिस रूप का नेति कहकर संकेत से गान किया है कहीं वही ब्रह्म तो नहीं है यह दोनों सुन्दर भेषधारी। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जनक जी ने पहले कभी श्रीराम जी के दर्शन नहीं किए और न ही कभी किसी संत से श्रीराम का यह रहस्य जाना, फिर जनक जी ने यह कैसे जाना कि श्रीराम, ब्रह्म से भी विलक्षण परब्रह्म हैं। यह रहस्य स्वयं जनक जी के मन ने ही बता दिया, वह कैसे? इसका उत्तर स्वयं जनक जी के मुख से ही सुनिए –

सहज विराग रूप मन मोरा । थकित होत जिमि चन्द चकोरा ।।

जनक जी विश्वामित्र जी से कहते हैं – मेरा मन जो स्वभाव से ही वैराग्य रूप बना हुआ है राम – लक्ष्मण को देखकर इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर। जिस मन ने ब्रह्मसुख का अनुभव कर लिया वो भला मायामय संसार की किसी वस्तु, व्यक्ति व परिस्थिति से क्यों आकर्षित होगा लेकिन आज ब्रह्मसुख का भोगी मन बरबस ब्रह्मसुख को त्यागकर इन दोनों को देखने लगा है, इतना ही नहीं इनसे प्रेम भी करने लगा है।

इनही विलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्म सुखहि मनु त्यागा ।।

यहाँ बरबस का अर्थ है मना करने पर भी न मानना, रोकने पर भी न रुकना अर्थात् जबर्दस्ती। जनकजी अपनी निर्मल बुद्धि से अपने मन को राम से हटाकर ब्रह्म – सुख में लगाने लगे, लेकिन आज विदेहराज का मन जो हमेशा बुद्धि के आधीन रहकर ब्रह्म – सुख का अनुभव करता था वह हाथ से निकल गया। क्यों? क्योंकि मन का स्वभाव है जहाँ इसको अधिक सुख मिलता है यह वहीं जाता है। इधर जनक जी तर्क देते हैं कि मेरा मन सहज ही विराग रूप है। माया में जा ही नहीं सकता, यदि यह ब्रह्मसुख को बरबस त्यागकर राम का अनुरागी हो गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि राम मायातीत ही नहीं बल्कि ब्रह्म से भी परे साक्षात् परब्रह्म हैं जिसका वेदों ने नेति कहकर गान किया है। इसलिए इनको देखते ही

अत्यन्त प्रेमवश होकर मेरे मन ने बरबस ब्रह्मसुख को त्याग दिया है।

यहाँ एक बात और समझने की है – जब जनकजी अपने मन पर विश्वास करके कहते हैं – **सहज विराग रुप मन मोरा** और **ब्रह्म जो निगम नेति कही गावा** फिर क्यों महामुनि विश्वामित्र जी से पूछते हैं कि यह दोनों सुन्दर बालक कौन हैं? महाराज जनक अपने अनुभव के आधार पर बोल रहे हैं न कि किसी सुनी हुई बात के आधार पर क्योंकि सुनी हुई बात पर पूर्ण विश्वास नहीं भी हो सकता। ऐसा भी नहीं है कि विदेहराज महाराज जनक जी महामुनि विश्वामित्र जी से अपना अनुभव छिपाकर कपट पूर्ण पूछ रहे हैं। जनकजी तो कहते हैं – हे मुनि! मैं आपसे सत्य (निश्छल) भाव से पूछता हूँ। हे नाथ! बताइए, छिपाव न कीजिए। यह दोनों सुन्दर बालक कौन हैं।

ताते प्रभु पूछऊँ सति भाउ । कहहु नाथ जनि करहू दुराउ ।।

विश्वामित्र जी से श्रीराम – लक्ष्मण के सम्बन्ध में पूछने का कारण यही है कि साधक हो या सिद्ध किसी को भी मन – मति पर पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। अपने मन के ऊँचे – से – ऊँचे अच्छे विचारों पर भी संतों की मोहर लगवा लेनी चाहिए, इसके बाद ही अपने मन व विचारों पर पूर्ण विश्वास करना चाहिए। इसलिए संतों से अपने मन के अच्छे – बुरे विचारों को बता देना चाहिए। जो साधक गुरू से छिपाव करता है उसे कभी भी पवित्र विवेक की प्राप्ति नहीं हो सकती।

होई न विमल विवेक उर गुरु सन किए दुराव ।

जब साधक में कोई दुराव (छिपाव) नहीं होता तब संत भी कुछ दुराव नहीं रखते, सब रहस्य खोलकर बता देते हैं।

गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ।।

इसलिए जनकजी के पूछने पर विश्वामित्र जी ने राम – लक्ष्मण के सम्बन्ध में जनकजी की बात की पुष्टि करते हुए सांकेतिक भाषा में हँसते हुए कहा – हे राजन्! आपने ठीक (यर्थाथ) ही कहा। आपका वचन झूठा नहीं हो सकता।

कह मुनि विहसि कहेहु नृप नीका। वचन तुम्हार न होई अलीका ।।

इस प्रकार मुनि से सुनकर ही जनक जी को मन-मति पर पूर्ण विश्वास हुआ कि राम साक्षात् परब्रह्म हैं। इसलिए अब तक जो मन को राम जी से रोकने की कोशिश कर रहे थे, अब वही जनक निसंकोच बार-बार राम जी के दर्शन करते हैं। प्रेम के कारण शरीर पुलकित होने लगा और हृदय में ओर अधिक उत्साह उमड़ने लगा।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहु । पुलक गात उर अधिक उछाहु ।।

अब तो जनकजी राम-लक्ष्मण की महिमा का निसंकोच गान मुनि के आगे करते हुए कहने लगे-

सुन्दरश्याम गौर दोउ भ्राता । आन्दहु के आनन्द दाता ।।

हे महामुनि! ये सुन्दर श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई आनन्द को भी आनन्द देने वाले हैं। जनकजी यह बात भी अपनी अनुभूति के आधार पर कह रहे हैं क्योंकि जनकजी आत्मानन्द रूप के अनुभवी हैं। सहज आनन्द स्वरूप आत्मा को भी आनन्दित करने वाला है भगवान् का यह आनन्दमय चिन्मय विग्रह।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी । विगत विकार जान अधिकारी ।।

जनकजी का यह प्रसंग बता रहा है कि ज्ञान अर्थात् मुक्ति से भी आगे का सुख है 'भगवत्प्रेम'। निर्गुण निराकार ब्रह्मानन्द से भी विलक्षण है सगुण साकार भगवद् प्रेमानन्द। कैवल्य मुक्ति से भी आगे है 'भगवत्प्रेम राज्य'।

ग्यानी ह्वै पुनि प्रेम पथ, आये बहुत सुजान ।
प्रेम प्याला जिन पियो, फिर भटकत नहिं आन ।।
ज्ञानी योगी सदा मगन, रहत जेहिं सुख माहिं ।
प्रीतम सुन्दर श्याम की, सो केवल परिछाहिं ।।
सुनत समाधि में सदा, योगी नादोंकार ।
सो अनहद श्रीराधिका, पायल की झंकार ।।
ब्रह्मानन्द से अति परे, प्रेमानन्द को देस ।
सोऽहं से फिर होत है, दासोऽहं परवेस ।।

ज्ञान की अधिष्ठात्री ब्रह्मविद्या का तप

साकार उपासक (प्रेमी भक्त) और निराकार उपासक (ज्ञानी) में कौन श्रेष्ठ है, यह जानने के लिए अर्जुन श्रीकृष्ण से गीता अध्याय 12 के प्रथम श्लोक में पूछते हैं–

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये याप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योग वित्तमा ।।

जो प्रेमी भक्तजन निरन्तर आपके भजन ध्यान में लगे रहकर आप (सगुण साकार) की उपासना करते हैं और दूसरे जो आपकी अव्यक्त (निर्गुण निराकार) भाव से उपासना करते हैं, उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है। इस पर भगवान् ने कहा–

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।

मुझ सगुण साकार में मन को आवेशित करके निरन्तर मेरे भजन ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन श्रद्धा युक्त होकर मुझे भजते हैं, वे भक्त उन ज्ञानी योगियों से भी श्रेष्ठ मान्य हैं।

चौथे श्लोक में निराकार को भजने वाले ज्ञानियों को भी भगवान् अपनी प्राप्ति वाला बताते हैं '**ते प्राप्नुवन्ति मामेव**' कहकर, तो फिर भक्त और ज्ञानी में भक्त को श्रेष्ठ क्यों कहा है? जब निर्गुण निराकार व सगुण साकार एक ही परम तत्त्व के दो रूप हैं। फिर सगुण साकार को भजने वाला श्रेष्ठ क्यों कहा? आखिर सगुण साकार व उसके भजने वालों में क्या है जो निर्गुण निराकार व उसको भजने वाले ज्ञानियों में नहीं है? इस प्रश्न के उत्तर को समझने के लिए पद्मपुराण के पाताल खण्ड में वर्णित प्रसंग को स्मरण करते हैं।

एक बार देवर्षि नारद जी ब्रज भूमि में भ्रमण कर रहे थे। उस समय तक भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार नहीं हुआ था, किन्तु होने वाला था। घूमते हुए श्रीनारद जी यमुना जी के उस पार वन में पहुँचे। देवर्षि नारद जी को आश्चर्य हुआ– क्या सृष्टि में इतनी शान्ति भी सम्भव है? लगता है इस वन में पवन भी स्थिर हो गई। पशु–पक्षी कहीं दिखते नहीं थे। पूरा

वन एकदम शान्त निस्पंद, गतिहीन हो गया था और आश्चर्य तो यह था कि वहाँ पहुँच कर देवर्षि की वीणा भी शान्त हो गई थी और वीणा के साथ-साथ देवर्षि का मन भी धीरे-धीरे एक अलौकिक शान्ति में विलीन होने लगा था।

मुनि नारद जी सोचने लगे कौन है यहाँ? किसका प्रभाव है यह? इधर-उधर देखा, सर्वत्र शान्ति-ही-शान्ति का साम्राज्य था। त्रिगुण का कहीं लेश भी नहीं। शुद्ध सत्त्वमयी शान्ति।

विचरण करके आगे बड़े तो देखा एक अलौकिक तपस्विनि को। एक अद्भुत ज्योतिर्मयी देवी वृक्ष मूल में बैठी श्रृंगार और आभूषणों से रहित। लगता था कि उसमें कोई पार्थिव अंश है ही नहीं, केवल ज्योति का पुञ्जीभूत रूप है यह। नारद जी को लगा कि यह कोई चिर परिचित सी लगती है। फिर भी अपरिचित है। इसे पहचानकर भी समझ नहीं पा रहा हूँ कि ये कौन है?

हे देवी! आप कौन हैं? नारद जी ने धीरे से पूछा। गंभीर स्वर से तपस्वनी देवी बोली-हे नारद जी! मैं ब्रह्मविद्या हूँ। सुनते ही नारद जी ने मस्तक झुका लिया और बोले ब्रह्मविद्या आप? आप यहाँ क्या कर रही हैं? देवी ने कहा-देवर्षि! आप देख रहे हैं कि मैं इस समय तप कर रही हूँ। आश्चर्य चकित होकर नारद जी हाथ जोड़कर बोले-हे देवि! जिस ज्ञान को पाकर ॠषिगण आत्मा सो परमात्मा अर्थात् परमात्मा को आत्मा से एकी भाव करके मुक्ति लाभ करते हैं आप तो उसी ज्ञान की साक्षात् अधिदेवता हो। आपको प्राप्त कर ज्ञानी निष्काम हो जाते हैं। आप तो कामनाओं की निषेध रूपा हो, फिर आपको कामना कैसी और बिना कामना के ये तप कैसा? आप तो साक्षात् मुक्ति स्वरूपा हो। कामना तो बन्धन हैं। मुक्ति में बन्धन कैसा?

हे नारद जी! मैं मुक्ति स्वरूपा ब्रह्मविद्या हूँ। मेरा प्रभाव है, जीव को निष्काम बनाकर माया के बन्धन से मुक्ति दिलाकर शाश्वत शान्ति प्रदान करना। परन्तु आप यह सुनकर आश्चर्य न करना कि मैं जीव को कामना से मुक्त करने वाली होकर भी स्वयं कामना करती हूँ। मेरी कोई लौकिक या पारलौकिक कामना नहीं है। मेरी कामना तो इन दोनों से परे

आलौकिक है, वह है गोपीभाव से नंदनन्दन श्रीकृष्ण के प्रेम की कामना। हे नारद जी! मुक्ति में भी वो आनन्द नहीं जो आनन्द श्रीकृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने में है। ब्रह्मानन्द से भी श्रेष्ठ है प्रेमानन्द। ये प्रेमानन्द ज्ञानियों को नहीं बल्कि भक्तों को प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण व उनके भक्तों की कृपा के बिना प्रेम राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता। देवर्षि इसलिए मैं तपस्या करती हुई उनकी व उनके भक्तों की कृपा की प्रतिक्षा में बैठी हूँ।

पद्मपुराण के इस प्रसंग से आप समझ गए होंगे कि भगवान् ने निर्गुण निराकार को भजने वाले ज्ञानियों की अपेक्षा सगुण साकार को भजने वाले भक्तों को अतिश्रेष्ठ क्यों कहा। ज्ञानी परमात्मा में विलीन होकर मुक्ति लाभ तो करता है परन्तु वह परमात्मा के पास रहकर उनकी प्रेममयी सेवा के द्वारा प्रेम लाभ नहीं कर सकता।

जैसे ज्ञान की देवी ब्रह्मविद्या है, ऐसे ही प्रेम की देवी श्रीराधा रानी है। ब्रह्मविद्या, ब्रह्मज्ञान देकर जीव को भगवान् में विलीन कर ब्रह्मानन्द प्रदान करती है। श्रीराधा रानी जीव को प्रेमी बनाकर प्रेमानन्द (युगल रस) का रसास्वादन कराती है। निर्गुण निराकार में मुक्ति तो है लेकिन प्रेमानन्द नहीं, सगुण साकार में मुक्ति के साथ – साथ प्रेमानन्द भी है।

इसलिए गीता के बारवें अध्याय के दूसरे श्लोक में भगवान् ने निराकार उपासक (ज्ञानी) की अपेक्षा साकार उपासक (भक्त) को अति उत्तम कहा है।

तत्त्व प्रेम को गहन अति, नहीं समझ में आय।
अनुभव ही कोइ करि सकै, कह्यो कौन पे जाय।।
प्रेम पंथ अति गुह्य है, जाने बिरला कोय।
जो जाने इस भेद कूँ, प्रेम रूप सो होय।।
ज्ञान पंथ में जे चलैं, लीन ब्रह्म में होय।
प्रेम डगर पग जे धरै, हरि संग बिहरैं सोय।।
माया सों मुक्ति मिले, चलें ज्ञान की राह।
प्रेम बिना नहिं पाइये, प्रीतम सांवलसाह।।

मैं भक्ति हूँ

मैं भक्ति हूँ। अपने स्वामी श्रीहरि व उनके प्रेमी भक्त जनों की इच्छा से ही मैं किन्ही भाग्यशाली जनों के हृदय में उनके अंत:करण की परम सात्त्विकी वृत्ति के रूप में प्रकट होती हूँ।

न जाने क्यों मेरे स्वामी, जो अनन्तानन्त ब्राह्मण्डों के अधिपति हैं, सदा मेरे आधीन रहने में अपना गौरव मानते हैं। यह उनके स्वभाव की परवशता, भक्त वत्सलता, अहैतुकी कृपा कहूँ या कुछ ओर, मेरी कुछ भी समझ में नहीं आता। मेरे बुलाने से तो ये चाण्डाल के घर जाकर उनका झूठा तक खाने को भी तैयार हो जाते हैं। जब मेरे प्रभु किसी के हृदय में मुझे देख लेते हैं तो ये उस भक्त की चाकरी तक करने को व्याकुल हो उठते हैं।

ये किसी के गुण-अवगुणों पर तभी तक ही दृष्टि रखते हैं जब तक उनके हृदय में मुझे नहीं देख लेते। भक्त के हृदय में मुझे देखते ही ये उनके अवगुणों को भुलाकर उनको हृदय से लगाने के लिये मचल उठते हैं। इन्हें शुचिता (पवित्रता) बहुत प्रिय है लेकिन मेरे सामने भक्त की अशुचिता पर दृष्टि न रखकर उसकी गोद में बैठकर उसी के हाथों से (खिचड़ी) खाने को कातर हो उठते हैं। मेरे आगे इनको न अपवित्र दिखता है, न झूठा, यहाँ तक कि क्या खाने की वस्तु है, क्या फैंकने की, ये भी विस्मृत कर जाते हैं। मेरे कारण ये छिलके तक खा गये। दुर्योधन के हृदय में मुझे न देख उनके द्वारा समर्पित स्वादिष्ट छप्पन भोगों की तरफ झाँका तक भी नहीं, खाने की बात तो दूर रही।

भक्त के हृदय में मुझे देखते ही लोक-लाज तक भूल भक्त से घुल-मिलकर एक होने के लिये अपनी ठकुराई छोड़ देते हैं। द्वारिकाधीश श्रीहरि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जिन लोगों के बीच अग्रपूजा के अधिकारी चुने गये इतना बड़ा सम्मान प्राप्त करके भी उन्हीं लोगों के सामने महाभारत युद्ध में अर्जुन के सारथी बने। उन दिनों जो कार्य सूत जाति के लोग किया करते थे, वही कार्य (रथ चलाना व घोड़ों की सेवा) मेरे प्रभु मुझ भक्ति के वश होकर अपने भक्त अर्जुन के लिये दासता करके आनन्दानुभव करने लगे।

जिन भक्तों ने अपने हृदय में मुझे बसाया है, उन भक्तों की चरण रज तक लेकर मेरे प्रभु अपने शीश पर धारण करने लगते हैं। उनके पीछे – पीछे भागते हैं प्रतिपल उनकी सम्भाल करने को। स्वयं को भक्तों का दास, भक्तों को मुकुटमणि मानकर उनकी स्तुति करने लगते हैं। भक्तों की दासता करने पर इन परमानन्द स्वरूप को विशेष परमानन्द की अनुभूति होती है।

समस्त ब्रह्माण्डों के भार का वहन करने वाले अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक को भी भक्तों के नेत्रों से टपकी प्रेमासुँओं की एक ही बूँद का भार व्याकुल कर देता है। जो स्वयं आनन्द की घनीभूत मूर्ति हैं, जिनको दुःख की छाया भी स्पर्श नहीं कर सकती, जो अपने आनन्द स्वरूप में सदा स्थित रहते हैं, मैंने उनको भी रोते देखा है। किनके लिये? जिनके हृदय में ये मुझे देख लेते हैं, उनके लिये। उन भक्तों के दुःख को ये अपना दुःख मानकर दुःखी होते हैं व उनके सुख को अपना सुख मानकर आनन्दित होते हैं।

मेरे प्रभु सबके लिये समान हैं। न उनका कोई प्रिय है, न अप्रिय। लेकिन अपने इस सहज स्वभाव को भूलकर अपने भक्तों के प्रिय को अपना प्रिय व भक्तों के अप्रिय को अपना अप्रिय मानने लगते हैं। मेरे प्रभु अपने अपराधी को तो क्षमा कर देते हैं, लेकिन भक्त अपराधी को क्षमा नहीं करते।

मोक्ष को प्राप्त करने के लिये मुख्य रूप से तीन साधनाएँ हैं – निष्काम कर्म, ज्ञान व मैं भक्ति। निष्काम कर्मयोगी व ज्ञानयोगी केवल मोक्ष ही प्राप्त करता है परंतु मेरे मार्ग पर चलने वालों को मोक्ष के साथ ही ऋषि – मुनि – योगी दुर्लभ प्रभु का प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। ऋषि – मुनि जन वांछित मुक्ति तो मेरा (भक्ति का) आनुषंगिक फल मात्र है। ज्ञान योगी व कर्म योगी को ये अपने में लीन कर लेते हैं लेकिन भक्त को ये अपने में लीन न करके अपने ही नित्य परिकरों में सम्मिलित करके अनन्त काल के लिये अपनी रसमयी लीलाओं का रसास्वादन कराते हैं और स्वयं भी भक्त के प्रेम का रस चखते हैं।

मेरे इस गूढ़ रहस्य को जानकर ब्रह्मज्ञान को त्याग कितनों ने मेरा

आश्रय लिया। ब्रह्मसुख को त्याग प्रेमाभक्ति का रसपान किया है। ब्रह्म सुख भोगी परम ज्ञानी राजर्षि जनक व परमहंस शुकदेव जैसे ब्रह्मज्ञानियों ने ब्रह्मसुख त्यागकर हृदय में मुझ भक्ति को स्थान दिया।

मेरे स्वरूप, रहस्य व महिमा का यद्यपि सद्ग्रन्थों में प्रकट रूप से विशद वर्णन हुआ है तब भी प्रेमी संतों के बिना वह समझ में नहीं आ सकता। भागवत आदि पुराणों में वेदव्यास जी ने, रामायण में बाल्मीकि, तुलसीदास आदि भक्त कवियों ने, भक्तिसूत्रों में शाण्डिल्य, नारद आदि ऋषियों ने मेरा विस्तृत विवेचन किया है। इतने पर भी प्रेमी संतों के बिना मेरा रहस्य हृदयंगम नहीं हो पाता।

यद्यपि मेरे बहुत से रूप हैं जिसका वैष्णव ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन हुआ है। उनके दो मुख्य भेद हैं – एक **अपराभक्ति** दूसरी **पराभक्ति**। मेरा अपरा रूप साधनात्मक अर्थात् साधन साध्य है जिसको साधन भक्ति कहते हैं। यह मेरा साधनात्मक रूप दो प्रकार से सम्पादित होता है – तन से व मन से। सेवा, पूजा, पाठ, दान, पुण्य, कथा, श्रवण, मन्दिर – देव दर्शन, संत – भक्त दर्शन, नाम जप, कीर्तन ,परिक्रमा, व्रत आदि तो तन से सम्पादित होते हैं व हरि नाम, रूप, लीला, धाम, चिंतन, ध्यान आदि मन से सम्पादित होते हैं। इस प्रकार तन व मन से मेरे कीर्तन आदि चौंसठ अंगों का अनुष्ठान करते – करते अंतःकरण में मेरे दूसरे रूप **पराभक्ति** के अवतरण की भूमिका तैयार हो जाती है।

अंतःकरण की भूमिका तैयार होते ही मेरे प्रभु के प्रेमी संतजन उनके हृदय में मेरे **पराभक्ति** रूप का बीजारोपण कर देते हैं। प्रेमी संतों का संग करते – करते साधक भक्तजन अपने अंतःकरण में मुझे फलने – फूलने का सुअवसर प्रदान करते हैं और फिर एक दिन मैं उनके हृदय में फल रूपा पराभक्ति के रूप में नृत्य करने लग जाती हूँ। फिर मेरा रसास्वादन करने के लिये भगवान् भक्त की गुलामी करने को मचलने लगते हैं। फिर क्या, फिर तो भक्त और भगवान् में भेद करना कि कौन प्रेमी है, कौन प्रेमास्पद, मेरे लिये भी मुश्किल हो जाता है। फिर तो मैं भक्त और भगवान् को परम सुखी देख – देखकर प्रसन्नता से ओर नाचने लगती हूँ। फिर तो हम तीनों (भक्त, भक्ति, भगवान्) में एक दूसरे को

सुखी करने की होड़ सी लग जाती है। बड़े-बड़े विद्वानों, ऋषि-मुनियों के लिये भी ये जानना मुश्किल हो जाता है कि हम तीनों में कौन बड़ा है। आज तक इसका कोई निर्णय नहीं ले सका। अंत में सबको यही कहना पड़ा-

"भक्त भक्ति भगवंत गुरु,चतुर नाम वपु एक"

सत्य तो ये है कि मैं भक्त और भगवान् को घोट-पीसकर इतना मिला देती हूँ कि दोनों में अंतर करना मुश्किल हो जाता है। दोनों दो होकर भी एक हो जाते हैं, एक होकर भी सदा दो बने रहते हैं। मेरे इसी सिद्धान्त को द्वैताद्वैत, भिन्नाभिन्न, भेदाभेद आदि नामों से जाना जाता है।

क्या आप जानना चाहेंगे कि सबके मनों को मोहित करने वाले जो साक्षात् मनमथ मन मथ हैं उनके भी मन को मोहित करने की शक्ति मुझमें कहाँ से आई? यह शक्ति आई है प्रेम की घनीभूत मूर्ति, अह्लादिनी शक्ति, महाभावस्वरूपा, रसिका, रासेश्वरी श्रीराधा रानी के चरण कमलों से। क्योंकि मैं उन्हीं के एक छोटे से अंश से जो प्रकट हुई हूँ। सोचो, जब मुझमें इतनी शक्ति व रसमाधुर्य है तो मैं जिनकी छोटी सी अंश कला मात्र हूँ वह कैसी होंगी? मैं तो उन महामयी के चरणों में अपने को सदा न्यौछावर करके ही जीवन धारण करती हूँ और उन रसमयी श्रीराधा रानी के रस से सदा सराबोर रहती हूँ और सबको सराबोर करती हूँ।

नमो नमो भगती हरि प्यारी।
पोषण करति सदा भक्तन को, पुर वैकुण्ठ बसावनहारी।।
ऋषि मुनिजन वाँछित सुत तुम्हरे,ज्ञान विराग सुमंगलकारी।
गंगादिक सरि सेव करत नित, मुकती दासी बनी तिहारी।।
सदा प्रसन्न रहत प्रभु तुम पै, पीछे पीछे चलत बिहारी।
करुण दास जा पर तुम रीझति, ताके श्रीहरि होत पुजारी।।

श्रीकृष्ण अवतार का हेतु–प्रेम

श्रीमद्भागवत जी के प्रथम स्कन्ध के आठवें अध्याय में कुन्ती जी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करती हुई कहती हैं –

हे भगवन्! आपने अजन्मा होकर जन्म क्यों लिया है, इसका हेतु बतलाते हुए कोई महापुरूष कहते हैं कि आपने राजा युधिष्ठिर का यश बढ़ाने के लिए यदुवंश में अवतार लिया है। कोई कहता है कि राजा यदु की कीर्ति बढ़ाने के लिए आपने यदुवंश में अवतार लिया है। दूसरे कोई कहते हैं कि वसुदेव और देवकी ने पूर्वजन्म में आपसे पुत्ररूप में प्रकट होने की प्रार्थना की थी। इसी कारण आप अजन्मा होते हुए भी जगत का कल्याण व दुष्टों का संहार करने के लिए वसुदेव –देवकी के पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं। कुछ लोगों का कहना है कि दैत्यों के भार से दबी पृथ्वी की प्रार्थना पर आपने भूतल पर अवतार लिया है।

इस प्रकार सबका मत बताकर कुन्ती अपना मत प्रकट करती हुई कहती है कि संसार में अज्ञानी लोग कामनाओं के वश होकर कर्म बन्धन में जकड़े हुए नाना प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं। ऐसे कर्म बन्धन की स्थिति में वो आपका चिंतन करना तो सोच भी नहीं सकते। उन्हीं दुःखी लोगों को संसार के क्लेशों से मुक्त करने वाली व आपमें मन को लगानेवाली प्रेम भक्ति प्रदायिनी दिव्य लीलाएँ करने के विचार से ही आपने यह अवतार धारण किया है। जो लोग प्रेम तथा भक्ति भाव से भरे हुए आपके चरित्रों को सुनते व सुनाते हैं, वे शीघ्र ही आपके उस चरण कमल का दर्शन प्राप्त करते हैं। जिससे सदा के लिए भव बंधन से छुटकारा हो जाता है। इस प्रकार से शास्त्रों में अवतार के अनेक कारण बतलाए हैं।

राम जन्म के हेतु अनेका । परम विचित्र एक ते एका ।।

राम चरित्र मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं –

जब जब होई धर्म की हानि । बाड़हीं असुर अधम अभिमानी ।।
करहिं अनीति जाई नहिं बरनी । सदिहिं विप्र धेनु सुर धरनी ।
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

जब–जब धर्म की हानि होती है और नीच अभिमानी असुर बढ़ जाते हैं और वे ऐसी अनीति करते हैं जो कही नहीं जा सकती। ब्राह्मण, गौ, देवता, पृथ्वी ये सब दुःखी हो जाते हैं। तब–तब कृपा के सागर अनेक प्रकार के शरीर धारण कर भक्तों के क्लेश दूर करते हैं।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह,राखहिं निगश्रुति सेतु ।
जग विस्तारहि विशद यश, राम जन्म कर हेतु ।।

असुरों (दुष्टों) को मारकर देवताओं (भक्तों) को स्थापित कर देते हैं और अपनी बाँधी हुई मर्यादा की रक्षा करते हैं। संसार में अपने निर्मल यश का विस्तार करते हैं। जिसको गाकर भक्त जन भवसागर तरते हैं। यही भगवान् के अवतार का प्रयोजन है।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं,कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं ।

भगवान् के अवतार का हेतु बताने से पहले गोस्वामी जी कहते हैं–

हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाई न सोई ।।

हरि अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह इसी प्रकार का है। यह बात भगवान् ने स्वयं गीता में बताई। वे स्वयं कहते हैं– '**न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः**' मेरे प्राकट्य के रहस्य को देवता और महर्षिगण कोई नहीं जानते।

अपने अवतार का हेतु प्रकट करते हुए स्वयं भगवान् गीता के चौथे अध्याय के सातवें व आठवें श्लोक में कहते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

जब–जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है तब–तब मैं अपने को प्रकट करता हूँ। साधु पुरूषों के परित्राण (दुःख से छुड़ाना), दुष्टों के विनाश और धर्म की स्थापना के लिए मैं युग–युग में प्रकट होता है।

साधुओं (सज्जनों) परित्राण, दुष्टों का दमन और धर्म संरक्षण – संस्थापक। ये भगवान् के अवतार का हेतु हैं, जो भगवान् ने बताएँ। ये ही कारण कुन्ती जी व तुलसीदास जी भी बताते हैं। फिर भगवान् ने ये क्यों कहा कि – अरे! इस रहस्य को देवता व ऋषि, मुनि भी नहीं जानते। जिसने एक बार भी गीता, रामायण या भागवत जी पढ़ी या सुनी होगी वह भी इस बात को जान लेता है कि भगवान् का अवतार भक्तों को सुखी करने, दुष्टों का नाश करने व धर्म की स्थापना के लिए हुआ है। इस रहस्य को जानने का फल बतलाते हुए भगवान् कहते हैं –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।

(गीता, ४/९)

हे अर्जुन! मेरे इस दिव्य जन्म और कर्म को जो मनुष्य तत्त्व से यथार्थ रूप से जान लेता है, वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता। वह जन्म – मरण से छूटकर सदा के लिए मुझको प्राप्त हो जाता है। भगवान् के जन्म (अवतार) व कर्म (लीला) का ऐसा क्या रहस्य है, जिसको देवता व ऋषि भी नहीं जानते और जिसको जानने वाला जन्म – मरण से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है। भागवत में कुन्ती जी, रामायण में तुलसीदास जी व गीता में भगवान् ने जो अवतार का हेतु बताया वो तो सभी जानते हैं। क्या इतना जान लेने से सभी मुक्त हो जाएँगें? ऐसा भी नहीं लगता है। भगवान् ने अपने अवतार के जो कारण बताए, उसकी सत्यता पर संदेह की तो कोई सोच भी नहीं सकता। फिर इस विरोधाभास का समाधान क्या है?

उपर्युक्त श्लोक में **'वेत्ति तत्त्वतः'** ये दो शब्द आए हैं। **'वेत्ति'** का अर्थ है **'जानना'** व **'तत्त्वतः'** का अर्थ है **'तत्त्व'** से (यथार्थ रूप से)। एक होता है जानना और एक होता है तत्त्व से जानना। दोनों में बहुत अन्तर है। इस संसार में कौन है जो चन्द्रमा को नहीं जानता। बच्चे भी चन्द्रमा को जानते हैं। सभी ने देखा है, ये है जानना। और तत्त्व से जानना क्या है? चन्द्रमा पृथ्वी से कितने योजन दूर है। इसका व्यास कितना है? किन तत्त्वों से मिलकर बना है और कब बना है? ये घटता

बढ़ता क्यों दिखाई देता है? चन्द्रग्रहण का रहस्य क्या है? यह प्रकाशित कैसे होता है? इसमें मौसम कैसा है, उसका क्या प्रभाव है? इस पर जीवन है या नहीं? यह पृथ्वी के चारों ओर कैसे चक्कर लगाता है? आदि – आदि की जानकारी को तत्त्व से जानना कहते हैं। अब आप समझ गए होंगे कि जानने और तत्त्व से जानने में कितन अन्तर है। भगवान् के अवतार का हेतु तो सभी जानते हैं लेकिन तत्त्वतः कोई बिरला ही जानता है। बिना कृपा के यह रहस्य समझ में नहीं आ सकता। **'सोइ जानेहि जेहि देहि जनाई'** इसलिए भगवान् ने गीता में कहा – **'न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः'।** मेरे इस रहस्य को कोई नहीं जानता न देवता, न महर्षिगण ही। फिर भगवान् के अवतार का तात्त्विक रहस्य क्या है? ये रहस्य है – **केवल प्रेम।**

कोई कह सकता है कि इस प्रेम को तो सभी जानते हैं। लेकिन मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूँ, भक्ति सूत्र में जिस प्रेम को नारद जी ने अमृत स्वरूप, प्रतिक्षण वर्द्धमान, अनिर्वचनीय बताया है। जिसको पाकर जीव भगवत् स्वरूप हो जाता है व स्वयं तो माया से तरता ही है अपने सम्पर्क में आने वालों को भी तारता है। लेकिन यह सांसारिक प्रेम केवल वासना, स्वार्थ एवं मोह का ही परिणाम है। न यह अमृत स्वरूप है और न ही प्रतिक्षण बढ़ने वाला है। इसमें फँसकर जीव स्वयं तो डूबता ही है दूसरों को भी डूबा देता है। इस मायिक प्रेम के तो सभी अनुभवी हैं।

यहाँ उस प्रेम की बात हो रही है जिसके कारण से भगवान् अवतार लेते हैं। इस प्रेम को कोई बिरला ही अनुभव कर सकता है।

तत्त्व प्रेम को गहन अति, नहीं समझ में आय ।
अनुभव ही कोइ करि सकै, कह्यो कौन पे जाय ।।
प्रेम पंथ अति गुह्य है, जाने बिरला कोय ।
जो जाने इस भेद कूँ, प्रेम रूप सो होय ।।

तभी तो मीरा ने कहा – **'ऐ री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोई।'** मीरा कहती है कि मेरी इस प्रेम की पीर को कोई नहीं जानता। इसको तो वो ही जान सकता है, जिसको यह रोग लग चुका है।

'**घायल की गति घायल जाने।**' वास्तव में ये प्रेम जानने की वस्तु है ही नहीं क्योंकि जाना बुद्धि से जाता है और यह प्रेम बुद्धि की पकड़ से बहुत दूर है। यह प्रेम बुद्धि में नहीं बल्कि हृदय में होता है। बिना भक्त, भगवन्त कृपा के इसको प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रेम के तत्त्व को प्रेमी बनकर ही अनुभव किया जा सकता है।

राम तो केवल प्रेम पियारा
जान लेइ कोई जानन हारा ।

इस प्रेम को हर कोई नहीं जानता। जैसे मीरा ने कहा– '**मेरा दर्द न जाने कोई।**' ऐसे ही राम जी भी हनुमान जी को सीता जी के लिए संदेश देते हुए कहते हैं– '**काहि कहौं यह जान न कोई।**' हे सीते! मैं प्रेम की बात किससे कहूँ क्योंकि कोई सुनकर भी समझ न सकेगा।

तत्त्व प्रेम कर मम अरू तोरा । जानत प्रिय एक मन मोरा ।।

मेरे तुम्हारे प्रेम का तत्त्व केवल एक मेरा मन ही जानता है दूसरा कोई नहीं।

सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानि प्रीति रस एतेनही माहीं ।।

सो वह मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है। मेरे प्रेम का सार इतने में ही जान लेना। इस प्रेम तत्त्व को भगवान् शिव ने भी जाना। भगवान् शिव देवताओं से कहते हैं–

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना ।।

हे देवगणों! श्रीहरि समान रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं, लेकिन प्रकट होते हैं केवल प्रेम से। यह मेरा अनुभव है। '**प्रेम ते प्रभु प्रकटई जिमि आगि।**' जैसे ईंधन से अग्नि प्रकट होती है, ऐसे ही प्रेम से प्रभु प्रकट होते हैं।

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण विगत विनोद ।
सो अज प्रेम भगति वश, कौसल्या की गोद ।।

जो ब्रह्म, सर्वत्र व्याप्त, माया रहित, निर्गुण, हर्ष–शोक से रहित है वे ही **प्रेमाभक्ति** के वश होकर कौशल्या की गोद में खेल रहे हैं।

विभीषण जी को राम जी ने कहा –

तुम सरीखे संत प्रिय मोरे । धरहुं देह नहीं आन निहोरे ।।

तुम जैसे संत मुझको बहुत प्रिय हैं। इसलिए मैं देह धारण करता हूँ। इसका कोई दूसरा कारण नहीं है।

भाव का भूखा हूँ मैं, भाव ही एक सार है ।
भाव से मुझे भजे तो, भव से बेढ़ा पार है ।
बाँध लेते भक्त मुझे, प्रेम की जंजीर में ।
इसलिए इस भूमि पर, होता मेरा अवतार है ।
भाव का भूखा हूँ मैं, भाव ही एक सार है ।

प्रभु अवतार के बहुत से कारण होते हुए भी मुख्य कारण प्रेम ही है। अवतार के जितने भी कारण संतों ने कहे व शास्त्रों ने बताए, यदि इन सब कारणों का पृथ्वी पर संयोग बन जाए तब भी भगवान् का अवतार नहीं हो सकता जब तक उनके प्रेमी न हों। क्योंकि भगवान् सब कुछ कर सकते हैं बिना अवतार लिए, लेकिन अपने प्रेमी भक्तों से प्रेम नहीं कर सकते। उसके लिए तो उनको आना ही पड़ेगा। तभी तो मीरा ने कहा – '**मीरा की तब पीर मिटेगी वैद्य साँवरिया होए।**' बिना कृष्ण मिलन के मीरा का उपचार असम्भव है। क्योंकि प्रेमी भगवान् से कुछ नहीं चाहता, वो तो केवल भगवान् को ही चाहता है।

जैसे परदेस गया पति या पिता अपनी पत्नी व बच्चों के लिए सब प्रकार के सुख व सुविधा दे सकता है बिना आए। लेकिन पत्नी व बच्चों को यदि उनके प्यार की माँग हो, यदि बच्चे अपने पिताजी की गोद में बैठना चाहें, उनके साथ खाना, खेलना, सोना चाहें तो प्रेम की इस माँग को क्या पिता परदेस में रहकर पूरा कर सकता है? इसके लिए तो उनको परदेस छोड़कर बच्चों के पास आना ही पड़ेगा। इसी प्रकार भगवान् भी बिना अवतार लिए सब कुछ कर सकते हैं लेकिन प्रेम नहीं कर सकते।

गीता में अवतार के तीन हेतु कहे हैं – साधुओं की रक्षा, दुष्टों का संहार एवं धर्म की स्थापना। क्या यह तीनों कार्य बिना अवतार लिए नहीं हो सकते? साधुओं की रक्षा व दुष्टों के संहार के लिए तो सुदर्शन चक्र ही

बहुत है। रही बात धर्म स्थापना की जब दुष्टों का संहार हो जाएगा फिर धर्म स्थापना तो अपने आप हो जाएगी। यदि फिर भी कोई विशेष धर्म स्थापन करना है तो इसके लिए तो संत ही बहुत हैं। किसी भी संत को विशेष अधिकार व शक्ति देकर इस जगत में धर्म संस्थापन का कार्य हो सकता है। केवल इन तीन मंगलमय महान् कार्य के लिए भगवान् को अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है। यह तीनों कार्य तो बिना अवतार लिए भी हो सकते हैं। लेकिन प्रेमी भक्तों से प्रत्यक्ष प्रेम का आदान –प्रदान करना यह पुनीत कार्य बिना अवतार लिए नहीं हो सकता। इसलिए किसी ने कहा है –

प्रेम के बन्धन में मोहन बँध गए ।
प्रेमियों ने जो बनाया बन गए ।।

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रभू, बँध्यौ प्रेम जंजीर ।
तन मथुरा मन ब्रज बसै, नैनन बरसै नीर ।।

X X X

प्रेम पदारथ अमल अति, भोग लेष नहिं गंध ।
सकल तत्त्व को तत्त्व है, नहीं नेम को बंध ।।

X X X

अकथ अलौकिक अमल अति,अमित अनन्त अनूप ।
अविगत अतुल अचिंत अरु, अगुन प्रेम को रूप ।।

X X X

अविनाशी अद्भुत अचल, अविरल अकल अपार ।
अगम अगोचर अप्राकृत, प्रेम सार को सार ।।

प्रेम की घनीभूत मूर्ति–'श्रीराधा'

अभी तक पूर्व लेखों में आपने प्रेम तत्त्व की महिमा पढ़ी जो बहुत ही सूक्ष्म रूप से कुछ एक उदाहरण देकर समझाने की चेष्टा की गई। इसमें मैंने अपनी तरफ से कुछ भी नहीं लिखा। जो कुछ लिखा वह शास्त्रों व संतों द्वारा प्रमाणित तथा पढ़ा व सुना हुआ है। जितना शास्त्रों में पढ़ा व संतों से सुना उतना हम समझ नहीं पाए। जितना समझा उतना लिख नहीं पाए और जितना लिखा उतना आप पढ़कर भी समझ नहीं पाए होंगे। फिर भी कुछ तो समझा ही होगा।

प्रेम एक ऐसी वृत्ति है जो सभी के हृदयों में प्रकट–अप्रकट रूप से रहती है। ये ही प्रेम की वृत्ति जब संसार से जुड़ती है तो राग कहलाती है और जब भगवान् से जुड़ती है तो अनुराग कहलाती है। संसार के प्रति है तो आसक्ति, भगवान् के प्रति है तो भक्ति बन जाती है। संसार में है तो वासना, भगवान् में है तो उपासना कहलाती है।

यह घर, परिवार सृष्टि का समस्त व्यवहार, व्यापार इसी के आधार पर चल रहा है। लोक, परलोक व आलोक सभी कुछ इसी के आधार पर चल रहे हैं। सबका सार व सबका आधार केवल प्रेम ही है। यहाँ तक कि स्वयं भगवान् भी इसी के आधार पर लीलाएँ करते हैं। यही साकार भगवान् के अवतार का निगूढ़तम रहस्य है। इस प्रेम तत्त्व को जाने बिना साकार को न जाना जा सकता है और न ही प्राप्त किया जा सकता है।

एक ही स्थल ऐसा है जहाँ प्रेम तत्त्व क्रियान्वित नहीं है। वह है निर्गुण निराकार ब्रह्म व उसमें लीन हुई आत्माएँ। प्रेम द्वैत में होता है, अद्वैत में नहीं। प्रेम दो चैतन्य तत्त्वों के बीच होता है, निर्गुण निराकार ब्रह्म अकेला है। वहाँ दूसरा चैतन्य तत्त्व नहीं है क्योंकि जो चैतन्य आत्माएँ ज्ञान मार्ग से चलकर ब्रह्म में लीन हुई हैं, वह द्वैत भाव से नहीं बल्कि अद्वैत भाव से लीन हुई हैं। जिसका परिणाम होता है परम् चैतन्य ब्रह्म व चैतन्य आत्मा दोनों का मिलकर एक रूप हो जाना। इसलिए वहाँ प्रेम क्रियान्वित नहीं होता।

यह प्रेम भगवद् स्वरूप है, अनादि तत्त्व है। इसका कभी जन्म नहीं हुआ है। यह भगवान् का स्वरूपभूत गुण है। भगवान् स्वयं प्रेम स्वरूप

हैं। भगवान् में अनन्त शक्तियाँ हैं, इसलिए भगवान् शक्तिमान कहलाते हैं। भगवान् शक्ति स्वरूप हैं इसलिए उनकी प्रत्येक शक्ति स्वरूपभूत ही होती है। भगवान् के सिवा, जहाँ भी जिसके पास कोई शक्ति है वह उसके आधीन तो है परन्तु वह शक्ति उसकी स्वरूपभूत नहीं है। वह शक्ति भगवान् से या किसी देवी देवता से या उस व्यक्ति के कर्म के अनुसार आती है। लेकिन भगवान् की जो शक्तियाँ हैं वह कहीं से आई नहीं बल्कि भगवान् स्वयं शक्ति स्वरूप हैं।

भगवान् की शक्तियों में सर्वोपरि शक्ति है 'प्रेमाशक्ति'। समस्त शक्तियाँ भगवान् के आधीन होते हुए भी एक ही स्वरूपशक्ति ऐसी है जिसके आधीन स्वयं भगवान् हैं, वह है प्रेम शक्ति। समस्त चैतन्य प्राणियों में जो प्रेम है वह इस शक्ति का अंश या अंशांश है। पूर्ण प्रेम का प्रकाश तो किसी में हो ही नहीं सकता, उसकी एक किरण का कोई अंश ही प्रकाशित होता है। उसी अंश से प्रकाशित होकर ये दुःखमयी दुनिया भी कुछ – कुछ सुहावनी सी लगती है, वरना यहाँ रहना एक पल भी मुश्किल हो जाता।

जरा गंभीरता से विचार कीजिए कि जिस प्रेम शक्ति रूपी प्रकाश पुञ्ज की केवल एक किरण के सबसे छोटे अंश से ये सृष्टि दुःख रूप होने पर भी इतनी सुहावनी लगने लगी कि जिसको त्यागने की बात भी आज का मानव नहीं सोच सकता, तो वह प्रेम प्रकाश पुञ्ज जहाँ साकार रूप धारण करके नित्य लीलायमान है वह आनन्द कैसा होगा? जरा विचारो, जो प्रेमानन्द स्वयं भगवान् को भी आनन्दित कर दे वह कैसा होगा? जिसके लिए भगवान् सहज तृप्त होते हुए भी अतृप्त बने रहते हैं। आप्तकाम व पूर्णकाम होकर भी जिसकी कामना करते हैं वह प्रेम कैसा होगा?

जानना चाहते हो वह कैसा है? क्या है? भलेहि आपका उत्तर हाँ में हो लेकिन फिर भी मैं समझा नहीं पाऊँगा, ये मेरी मजबूरी है क्योंकि यह तत्त्व न तो समझाया जा सकता है और न ही कोई सुन व पढ़कर समझ सकता है। इसको जानना व साक्षात् कर लेना केवल कृपा साध्य है, न कि साधन साध्य। हाँ, मैं इतना तो बता ही सकता हूँ कि जिस प्रेम की

महिमा मैं कहता नहीं अघाता और जो प्रेम भगवान् की स्वरूपभूत शक्ति है, उसी प्रेम की घनीभूत मूर्ति है 'श्रीराधा'। राधा स्वयं प्रेम है।

हम (आत्मा) और हमारा शरीर (माया तत्त्व) ये दो तत्त्व हैं। आत्मा परमात्मा का अंश है और शरीर माया का अंश। लेकिन ऐसा श्रीराधा में नहीं है। ऐसा नहीं कि श्रीराधा की आत्मा ओर है और शरीर कोई ओर तत्त्व है। वहाँ देह और देही का भेद नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व हैं। हमारी आत्मा परमात्मा तत्त्व व शरीर माया तत्त्व है लेकिन श्रीराधा केवल एक ही तत्त्व हैं, वह है केवल 'प्रेम'।

हमें ऐसा भी नहीं मानना चाहिए कि पहले प्रेम तत्त्व था फिर उसके बाद प्रेम से राधा प्रकट हुई। प्रेम से राधा नहीं बल्कि राधा ही प्रेम है। चाहे तो कहो कि प्रेम अनादि तत्त्व है और चाहे कहो कि राधा अनादि है। दोनों का एक ही अर्थ होगा।

श्रीराधा रानी भगवान् श्रीकृष्ण की स्वरूप शक्ति हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द हैं। सत + चित + आनन्द = सच्चिदानन्द। भगवान् सत हैं अर्थात् अविनाशी हैं, अनादि व अनन्त हैं। भगवान् चित हैं अर्थात् चैतन्य स्वरूप हैं, जड़ नहीं है। भगवान् आनन्द हैं अर्थात् आनन्दघन हैं। वहाँ दुःख का लेश भी नहीं है। इसलिए भगवान् का एक नाम सच्चिदानन्द है। श्रीराधा श्रीकृष्ण की आनन्द शक्ति (अह्लादिनी शक्ति) है और यह शक्ति श्रीकृष्ण की स्वरूपा शक्ति होने से उनसे अलग नहीं की जा सकती। चाहे कृष्ण कहो या चाहे राधा कृष्ण कहो, दोनों का एक ही अर्थ है। जिस प्रकार चाहे गुड़ कहो चाहे मीठा गुड़ कहो, दोनों का एक ही अर्थ है। जैसे गुड़ में मीठा नहीं होता बल्कि गुड़ ही मीठा होता है। कृष्ण यदि गुड़ है तो राधा मिठास है। दोनों को दोनों से अलग नहीं किया जा सकता।

मीठी खीर में जो मिठास है वह खीर का स्वरूपभूत गुण नहीं है। वह खीर से अलग है, वह मिलाया गया है। लेकिन गुड़ में जो मिठास है वह उसका स्वरूपभूत गुण है। इसी प्रकार प्रेम की घनीभूत मूर्ति श्रीराधा, श्रीकृष्ण की स्वरूपा शक्ति है उनसे अलग नहीं है। कृष्ण का ही परम माधुर्य है श्रीराधा। गुड़ मिठास के बिना और मिठास गुड़ के बिना नहीं हो

सकती। सच बात तो ये है कि गुड़ ही मिठास है व मिठास ही गुड़ है। दोनों में तत्त्वत: कोई भेद नहीं। जिस प्रकार गुड़ और मिठास दोनों दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो हैं। इसी प्रकार राधाकृष्ण दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो हैं। ये अनादि काल से नित्य युगल हैं और अनन्त काल तक युगल ही रहेंगे।

एक तत्त्व दो तनु धरे नित रस पारावार ।

राधा कृष्ण कृष्ण हैं राधा, एक रूप दोऊ प्रीति अगाधा।

राधा कृष्ण स्नेही एक प्राण दो देही ।

राधिकोपनिषद् में श्रीराधा रानी की महिमा –

एक बार सनकादिक ऋषियों ने ब्रह्मा जी को प्रसन्न करके उनसे पूछा – हे देव! परम् देव कौन हैं? उनकी कौन – कौन सी शक्तियाँ हैं? उनमें सर्वोपरि कौन है? इस सृष्टि की कारणभूत शक्ति कौन है? इन प्रश्नों के उत्तर रूप में ब्रह्मा जी बोले – हे पुत्रों! सुनो, यह गोपनीयों में भी गोपनीय अत्यन्त गुप्त रहस्य है। कोई बिरला ही इसके सुनने का अधिकारी होता है क्योंकि इस पर विश्वास करना सहज नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ही परम देव हैं। इनसे परे कुछ भी नहीं है। वे ही छहों ऐश्वर्यों से परिपूर्ण भगवान् हैं। गोप – गोपियाँ इनका सेवन करती हैं। वृन्दा (तुलसी) उनकी आराधना करती है, वे वृन्दावन के स्वामी हैं। वे ही एकमात्र परम ईश्वर हैं। उन्हीं का एक रूप अनन्त ब्रह्माण्डों के अधिपति नारायण हैं। उन्हीं श्रीकृष्ण के अंश के एक – एक अंश प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अलग – अलग विष्णु रूप धारणकर सृष्टि के पालन कर्ता बने। वे ही सबके अनादि कारण हैं। उन्हीं श्रीकृष्ण की अह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया बहुत सी शक्तियाँ हैं। उनमें अह्लादिनी सबसे श्रेष्ठ है। ये ही अह्लादिनी शक्ति अंतरंगभूता 'श्रीराधा' हैं जो श्रीकृष्ण द्वारा आराधित होने पर भी श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं, इसलिए राधिका कहलाती हैं। समस्त गोपियाँ, पटरानियाँ व अनन्त वैकुण्डों की अनन्त लक्ष्मियाँ इन्हीं की कायव्यूहरूपा (शरीर के अंग – प्रत्यंगों की तरह) हैं। राधा और कृष्ण एक तत्त्व होते हुए भी नित्य दो बने हुए हैं। ये श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण ईश्वरी हैं, सनातनी हैं। श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। ऐकान्त

में चारों वेद इनकी स्तुति करते हैं। इनकी महिमा मैं (ब्रह्मा) अपनी समस्त आयु में भी वर्णन नहीं कर सकता। जिन पर इनकी कृपा होती है वही इनके परमधाम (निकुञ्ज वृन्दावन) की प्राप्ति करता है। श्रुतियाँ इनके अट्ठाईस प्रसिद्ध नामों का गान करती हैं –

1. राधा 2. रासेश्वरी 3. रम्या 4. कृष्णमन्त्राधि देवता 5. सर्वाद्या 6. सर्ववन्द्या 7. वृन्दावन विहारिणी 8. वृन्दाराध्य 9. रमा 10. अशेष गोपी मण्डल पूजिता 11. सत्या 12. सत्यपरा 13. सत्यभामा 14. श्रीकृष्ण वल्लभा 15. वृषभानुसुता 16. गोपी 17. मूलप्रकृति 18. ईश्वरी 19. माधवी 20. राधिका 21. आरम्या 22. रूक्मिणी 23. परमेश्वरी 24. परात्परतरा 25. पूर्णा 26. पूर्णचन्द्रनिभानना 27. मुक्ति भुक्ति प्रदा 28. भवव्याधि विनाशिनी

इन 28 नामों का जो नित्य पाठ करते हैं वे जन्म मुक्त हो जाते हैं। ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है।

जिन श्रीराधा रानी की इतनी महिमा शास्त्रों व संतों ने गाई, वही करुणामयी राधा स्वयं अपने निज धाम सहित अवतरित होकर इस धरा पर वृषभानु सुता के रूप में प्रकट हुई और अपने प्रेम राज्य के अनेक रहस्यों को प्रकाशित करके हम जैसे पामर प्राणियों के लिए अपने निज घर के द्वार का पावन मार्ग प्रशस्त किया। वह मंगलमय पावन दिवस राधा रानी के प्रकट होने के कारण राधाष्टमी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

करहु कृपा वृषभानु दुलारी ।
सर्वेश्वरि सहचरि जन सेवित,मुनिजन वंदित आनँद कारी ।।
प्रेममयी महाभाव स्वरूपा, करुणानिधि कीरति सुकुमारी ।
मंगल करनि हरनि भव बाधा,चरणकमल दुख संकट हारी ।।
नाम रसीलो रस को दाता, मुरली में नित जपत बिहारी ।
रति शचि उमा रमा ब्रह्माणी, सर्व शक्ति स्वामिनि अवतारी ।।
चरण कमल की निज सेवा में, राखहु पास सु विनय हमारी ।
करुण दास ले आस हृदय में,सब तजि आयो शरण तिहारी ।।

मैं चिदानंदघन ब्रजभूमि हूँ

मैं सच्चिदानंदमयी ब्रज भूमि हूँ। मैं पृथ्वी पर रहकर भी अप्राकृत हूँ। मैं अपने प्रियतम (श्री कृष्ण) की ही अंगस्वरूपा हूँ। वे मेरे अंगी हैं। जैसे मेरे प्रियतम सच्चिदानंदमय विग्रह हैं, उनका अंग होने से मैं भी सच्चिदानंदमयी ही हूँ। प्रकृति का कोई भी गुण मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं ब्रह्मा की सृष्टि के अंतर्गत नहीं हूँ। ये मेरे प्रभु की ही लीला का चमत्कार है जो मैं अप्राकृत होने पर भी प्राकृत जैसी दिखवाई देती हूँ।

चार प्रकार के प्रलयों में से किसी भी प्रकार का प्रलय मेरा स्पर्श नहीं कर सकता क्योंकि मैं अविनाशी व चिन्मयी हूँ। साधारण लोगों के लिये तो मैं ब्रह्मा की बनाई सृष्टि में पृथ्वी की ही समता लिए दिखवाई देती हूँ। मुझमें प्रकृति के समस्त गुण दिखवाई देते हैं लेकिन जो मेरे प्रियतम के रंग में रंग चुके हैं, अपने प्रियतम के संकेत से मैं उनको अपना गुणातीत अप्राकृत चिन्मय स्वरूप प्रकट दिखवा देती हूँ।

कृपा प्राप्त जीव ही मेरे पास आते हैं। जिन पर विशेष कृपा होती है उनको मेरे प्रियतम मेरा वास दे देते हैं। जिन पर अति विशेष कृपा करते हैं उनको ये मरणपर्यन्त वास देकर अंत में मेरा साक्षात्कार करा देते हैं और सदा के लिए नित्य लीला में सम्मिलित करके कृतार्थ कर देते हैं।

मेरे प्रियतम ने मेरा रूप – स्वरूप इतना अधिक सुन्दर, सुहावना व लुभावना बना रखवा है कि ये स्वयं ही मुझे देखव – देखवकर सदा लुभाये रहते हैं। मेरे श्रीप्रिया – प्रियतम युगलकिशोर अपने निज परिकरों के साथ नित्य ही मुझमें विहार करते रहते हैं। कहाँ तक कहूँ ये मुझमें इतने आसक्त हैं कि मुझे छोड़कर एक कदम भी कहीं बाहर नहीं जाते। अपने निज स्वरूप से नित्य निरन्तर मुझमें ही नित्य विहार करते रहते हैं। अनादि काल से अनन्त काल तक इनकी प्रेम रसमयी लीला निरन्तर चलती रहती है। यदि इनको मुझसे बाहर कहीं जाना पड़े तो भी ये मुझे नहीं छोड़ते। बाहर जाने के लिए दूसरा रूप धारण कर लेते हैं, अपने एक रूप से मेरे पास ही बने रहते हैं। कई बार तो मेरी भूमि से बाहर प्रेमी भक्तों के पास मुझको अपने साथ ही प्रकट कर प्रेमी भक्तों को दर्शन देते हैं।

मेरे एक रज कण को पाने के लिए ब्रह्मा जैसे ईश्वर कोटि के

देवता तप व प्रार्थना द्वारा मेरे प्रियतम को रिझाते हैं। मेरे रज कणों को अपने शीश पर चढ़ाने के लिए लालायित रहते हैं। ब्रह्मा, शिव और विष्णु मेरा वास करने के लिए पर्वत रूप धारण करते हैं। ब्रह्मा बरसाना में ब्रह्मांचल पर्वत के रूप में, शिव नंदगाँव में नंदेश्वर पर्वत व नारायण विलासगढ़ बरसाना में नारायण पर्वत के रूप में मुझमें निवास करते हैं। कहाँ तक कहूँ मेरे प्रियतम स्वयं श्रीकृष्ण भी गोवर्धन पर्वत के रूप में सदा मेरे हृदय पर विराजते हैं। मेरे प्रियतम के सदा पास रहने वाले इनके सखा उद्धव जी भी मेरे रज कणों को पाने के लिए लता-पता बनकर मेरी देह रूपा ब्रजभूमि का वास करना चाहते हैं।

जानते हो मेरी इतनी अधिक महिमा क्यों है? क्योंकि मुझे श्री सर्वेश्वर प्रभु की प्रियतमा सर्वेश्वरी श्री राधारानी की नित्य सान्निध्य जो प्राप्त है। मुझ पर एकमात्र इन्हीं का अधिकार है। ये यहाँ की महारानी हैं। मैं केवल इन्हीं की हूँ। इनके श्री चरण नित्य निरन्तर मुझे प्राप्त हैं। मेरा प्रत्येक रज कण श्री राधा किशोरी के युगल चरणों से सुसंस्कृत है, चरण चिन्हों से समलंकृत है। चौरासी कोस की मेरी इस भूमि की ये ही स्वामिनी हैं, अधिष्ठात्री हैं।

महाप्रलय के समय पृथ्वी देवी को भगवान् वराह पूछते हैं- 'देवी! बताओ, मैं तुम्हें कहाँ पर स्थापित करुँ।' तब वराह भगवान् से मेरी महिमा सुनकर पृथ्वी ने कहा- 'हे प्रभो! यदि आपकी कृपा हो जाये तो इस ब्रज भूमि से सटाकर इसके चारों ओर मुझे स्थापित कर दीजिये।' पृथ्वी की इच्छा पूर्ण हुई। तब से पृथ्वी के साधारण लोग भी मेरे पास आने लगे।

अपने प्रियतम की इच्छा जान कर ही मैंने अपने वास्तविक स्वरूप को साधारण लोगों की दृष्टि से छिपा लिया और अपने आपको पृथ्वी के ही समान प्राकृत दिखाई देने लगी। भले ही मैं साधारण प्राकृत दिखाई देती हूँ फिर भी जो कोई जीव मेरे पास आता है उसको मैं अपना प्रभाव कुछ-न-कुछ तो दिखाती ही हूँ। उसके मन में भाव भक्ति उसके अधिकारानुसार न्यूनाधिक देती हूँ, उसके हृदय में शान्ति व प्रेम का संचार करती हूँ, क्योंकि मेरे पास वही आ सकता है जिस पर मेरे

श्रीप्रिया – प्रियतम कृपा करते हैं।

मुझे मेरे श्रीप्रिया – प्रियतम ने ये योग्यता प्रदान कर रखी है कि जिसकी जैसी भावना होती है, मैं वैसे ही प्रभाव वाली उसको दृष्टिगोचर होती हूँ। जब कोई भी जीव – जन्तु या वस्तु का पृथ्वीलोक से चौरासी कोस की मेरी इस देह स्वरूप भूमि की सीमा में प्रवेश होता है तो वह जीव – जन्तु व वस्तु भौतिक नहीं रह जाती, उसको भी दिव्यता व चिन्मयता प्राप्त हो जाती है। ये बात अलग है कि किसी को इसकी अनुभूति नहीं हो पाती। कृपा प्राप्त कोई विरला ही इसका अनुभव कर पाता है। जब वह मेरी इस भूमि से लौटकर चौरासी कोस की सीमा पार कर बाहर जाता है तो फिर वह साधारण प्राकृत ही हो जाता है। इसलिए जो मेरी इस अप्राकृत भूमि में देह त्यागता है, वह विशेष कृपा प्राप्त कर मेरा वास्तविक स्वरूप प्राप्त कर लेता है।

पृथ्वी के जितने भी तीर्थ हैं वे सभी मुझमें ही निवास करके कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं। प्रयाग भले ही समस्त तीर्थों का राजा है वह भी मेरे श्रीप्रिया – प्रियतम की आज्ञा लेकर त्रिवेणी कूप के रूप में बरसाने के ऊँचा गाँव में निवास करता है। चौरासी कोस के भीतर समस्त तीर्थ प्रकट निवास करते हैं। इसलिए चौरासी कोस की परिक्रमा यात्रा करने से समस्त तीर्थों की यात्रा भी हो जाती है।

बिना श्रीराधा रानी की कृपा के यहाँ कोई भी नहीं आ सकता। एक बात ओर है वह ये कि जब कृपा बुलाती है, तो सदा के लिए ही बुलाती है। इसलिए जब कोई मेरी इस भूमि में आता है तो उसके साथ ही उसका जीवन भर का दाना पानी भी आ जाता है। यह बात अलग है कि वह अपनी इच्छा से कृपा ठुकराकर वापिस लौट जाता है। क्योंकि कृपा किसी के साथ खींचातानी नहीं करती। कृपा शक्ति जीव की प्रबल इच्छा के साथ छेड़छाड़ नहीं करती।

यदि कोई मेरा वास करना चाहता है तो कृपा शक्ति उसको मेरा वास दे देती है। कोई कृपा प्राप्त जीव मेरा वास कर ले तो वह बिना कुछ साधन किये केवल मेरे वास के प्रभाव से ही युगल प्रेम प्राप्त कर सकता है यदि वह कोई अपराध न करे तो। ब्रज वास करनेवाले को मैं धीरे – धीरे

अपने प्रभाव से अपने श्रीप्रिया – प्रियतम के योग्य बना देती हूँ। यदि कोई जीव मेरे वास का पूर्ण लाभ लेना चाहे तो वह नित्य प्रति मेरे प्रभाव को जानने व मानने वाले संतो का संग करे व किसी भी ब्रजवासी के प्रति अपराध न करे क्योंकि यहाँ बसने वाला प्रत्येक जीव चाहे वह महापापी ही क्यों न हो, सभी कृपा प्राप्त हैं। स्वामिनी श्री राधारानी की प्रजा हैं। उनका किया अपराध मेरे प्रभाव को प्रकट नहीं होने देगा।

दूसरी बात जो बड़े ध्यान देने की है वह ये कि मैं अपने अप्राकृत, चिन्मय स्वरूप को छिपाकर जन साधारण के लिये अपने आप को प्राकृत पृथ्वी जैसी प्रकट करके रखती हूँ। इसी से मैं अपने को अनाधिकारियों से छिपाये रहती हूँ। इसलिये मेरे इस प्राकृत पृथ्वी जैसा दिखाई देने वाले रूप को देखकर किसी प्रकार का कोई अभाव न करे, न ही निंदा करे। नहीं तो अपराध हो जाएगा। मेरे और मेरे वासियों के प्रति सद्भाव रखते हुए जो जीव यहाँ निवास करता है वह एक न एक दिन अवश्य मेरा साक्षात्कार करके नित्य लीला में सम्मलित हो जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

वृन्दावन अटकन ही अटकन।
जित देखूँ उत ही मन अटकै, रही तनिक नहिं मन की खटकन।।
चटक रंग फूली फुलवारी, ललित कलप लतिका तरु लटकन।
कनिकमयी धरणी मणि विजड़ित,कुसुम बिछावन की अति चटकन।।
रुनुक झुनुक पिय प्यारी डोलन, हाव भाव नर्तन भ्रू मटकन।
नव निकुंज रस रास माधुरी, विवि छबि लखि सखियन की गटकन।।
चमचमात मणि कुंजमहल अति,रवि कबहुँ शशि किरन की छिटकन।
करुण दास वृन्दावन शोभा, देखि मिटी या मन की भटकन।।

श्रीराधाकृष्ण की अष्टयाम सेवा का चिंतन

साधक सर्वप्रथम स्वयं का श्रीराधा रानी की प्रिय सखी रूप से चिंतन करे। वृन्दावन के रंग बाग की निज निकुंज में अपनी अवस्थिति का चिंतन करते हुए प्रात: शैया से उठकर रस धाम श्रीवृन्दावन की शोभा श्री का अवलोकन करे। श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक गुरु रूपा सखियों की कृपा मनाये। फिर स्नान करके वस्त्राभूषण से स्वयं को सुसज्जित करे। सेवा सौंज सजाकर गुरु रूपा जू की सेवा कर गुरु रूपा मंजरी के साथ श्रीरंगदेवी जी की सेवा करे। फिर गुरु स्वरूप मंजरी के अनुगत होकर प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण की अष्टकालीन सेवा सम्पादित करे।

प्रात समय उठि हृदै विचारो हौं सखी नित कुंज की।
सेवा करूँ अनुराग युत हरि राधिका सुख पुंज की।
अति निपुन सर्व कला गुनन में परम रमनी सुन्दरी।
तत सुख सुखी मन रहत निस दिन हौं किशोरी मंजरी।
दोऊ करैं रस रास केलि किलोल मम हिय भावना।
याके बिना नहिं चैन पल भर आन नहिं मन कामना।
यद्यपि हिये रति युगल तद्यपि स्वामिनी सेवा परा।
कह करुण दास मिले न गुरु बिन भेद सरस परम्परा।

निशांतकालीन सेवा

1. ब्रह्ममुहूर्त में सखियों के संग गाते, बजाते, नाचते मोहन महल के आंगन में पहुँचना।

2. सुरतांत के पदों का गायन व ललित गायन द्वारा युगलकिशोर को जगाना।

3. गायन व कोकिल, शुक, मयूर आदि पक्षियों का कलरव सुनकर श्रीप्रिया-प्रियतम का शैया से उठकर बैठना।

4. युगल के अस्त-व्यस्त वसन व आभूषणों को ठीक करना।

5. युगल को फुलवारी की सुंदर छटा का अवलोकन कराते हुए मंगल कुंज में पधराना।

6. दोनों के हाथ-मुख धुलवाकर सुगंधित मंजन कराना।

7. दोनों को मंगल भोग आरोगवाकर आचमन कराना।

8. दोनों को ताम्बूल प्रदान कर स्नेहयुत आरती उतारना।

9. दोनों को वृन्दावन की शोभा का दर्शन कराना।

10. दोनों को वृन्दावन के खग, मृग आदि के साथ अनेक प्रकार के खेल रचाते दर्शन करना।

प्रात:कालीन सेवा

1. श्रीराधाकृष्ण के स्नान के लिये सुवासित जल व उबटन आदि सौंज तैयार करना।

2. वन बिहार करते हुए श्रीप्रिया-प्रियतम को स्नान कुंज के लिये लाना।

3. विधिपूर्वक दोनों को स्नान चौकी पर बैठाना।

4. सुरभित उबटन द्वारा हल्के हाथ से दोनों के अंगों का प्रेमपूर्वक मार्जन करना।

5. पुष्पसार को दोनों के श्रीअंगों में रचाना।

6. आंवले का चूर्ण, फुलेल आदि से दोनों के केशों को संस्कारित करना।

7. ऋतु अनुसार सुवासित शीत उष्ण जल से विधिपूर्वक स्नान कराना।

8. मृदुल वस्त्र द्वारा दोनों के श्रीअंगों व केशों को पौंछना।

9. दोनों को एक दूसरे के अनुराग को बढ़ाने वाले ऋतु अनुसार वस्त्र धारण कराना।

10. यदि के धूम से केशों को पूर्ण रूपेण सुखाकर सुगंधित करना।

11. दोनों को शृंगार कुंज की शृंगार चौकी पे पधराना।

12. श्रीप्रिया जू के केशों को सुगंधित तेल लगाकर कंघी करना व सुन्दर वेणी रचना कर फूलों से अलंकृत करना।

13. प्रियतम श्रीकृष्ण के केशों को सुगंधित तेल लगाकर कंघी करना।

14. दोनों के श्री अंगों को आभूषणों से अलंकृत करना।

15. दोनों को शृंगार भोग चौकी पर बैठाकर शृंगार भोग

आरोगवाना।

16. दोनों को आचमन कराके सुगंधित ताम्बूल समर्पण करना।

17. दोनों को सिंहासन पर बैठाकर आरती उतारना।

पूर्वाह्नकालीन सेवा

1. दोनों को वन विहार के लिये रंगद, रसादिक कुंजों में ले जाना।

2. वृन्दावन की कुंज, निकुंजों में दोनों का बिहार करते अवलोकन करना।

3. दोनों की इच्छा जानकर समय-समय पर सेवा के लिये सौंज जुटाना।

4. कुंज-निकुंजों में ऋतु अनुसार उत्सवों की तैयारी करना।

5. इनकी प्रत्येक लीला में सम्मिलित होकर सहयोग देना।

मध्याह्नकालीन सेवा

1. दोनों को भोजन के लिये राजभोग कुंज में पधराना।

2. राजभोग की तैयारी करना।

3. दोनों के चरण धोकर हाथ धुलवाना।

4. दोनों को विधिपूर्वक राजभोग (भोजन) आरोगवाना।

5. दोनों को तृप्त जानकर सुवासित जल से आचमन कराना।

6. सरस सुगंधित ताम्बूल समर्पण करना।

7. प्रीतिपूर्वक युगल की आरती उतारना।

8. जै-जैकार करते हुए दोनों की बलैयाँ लेना।

9. युगल की प्रसादी का आस्वादन करना।

10. मध्याह्न विश्राम के लिये दोनों को मोहन महल के लिये ले जाना।

11. दोनों पर चँवर, मोरछल आदि डुलाना।

12. दोनों को मोहन महन के आंगन में मंत्रपीठ पर पधराना।

13. दोनों की रसमयी स्तुति करना।

14. विश्राम शैया को पुष्पों से समलंकृत करना।

15. मोहन महल को इत्र आदि सुगंधित द्रव्यों से संस्कारित करना।

16. दोनों को सस्नेह कुसुम शैया पर पधराना।

17. चरण सेवा उपरान्त द्वार पर स्वर्ण तारों से निर्मित चिक डालना।

18. कुंज महल के झरोखों से श्रीप्रिया प्रियतम के केलि विलास का दर्शन करना।

अपराह्नकालीन सेवा

1. श्रीप्रिया – प्रियतम के केलि विलास के प्रत्यक्ष दर्शन व अप्रत्यक्ष दर्शन (हृदय में चिंतन) करना।

2. प्रिया प्रियतम श्रीराधाकृष्ण के उत्त्थापन की तैयारी करना।

3. भाँति – भाँति से पुष्पों व कलियों के सुन्दर गजरे निर्मित करना।

4. सरबत आदि पेय व व्यंजन तैयार करना।

5. युगल माधुरी लीला का मधुर स्वर से गायन करना।

6. वादन व नृत्य करना।

7. युगल को उत्त्थापन कराना।

8. निकुंज महल में प्रवेश करना।

9. श्रीप्रिया – प्रियतम के वस्त्र – आभूषण संवारना।

10. दोनों को पुष्प सिंहासन पर पधराना।

11. दोनों के हस्त प्रक्षालन कराके उत्त्थापन भोग आरोगवाना।

12. दोनों को वन बिहार के लिये ले जाना।

13. दोनों के पीछे – पीछे सेवा की सामग्री लिये चलना।

14. फुलवारी में दोनों को पुष्प श्रृंगार धारण कराना।

15. ऋतु अनुसार उत्सवों की तैयारी करना।

16. भाँति – भाँति से दोनों को लाड लड़ाना।

संध्याकालीन सेवा

1. दोनों को संध्या कुंज के रत्नसिंहासन पर पधराना।

2. कनक थाल में दीपावली सजाकर संध्या आरती करना।

3. पुष्पांजली अर्पण करना।

4. दोनों की रसमयी स्तुति व प्रार्थना करना।

प्रदोषकालीन सेवा

1. दोनों के सुख विधान हेतु वादन, गायन व नृत्य करना।
2. श्रीप्रिया – प्रियतम का नृत्य करते हुए दर्शन करना।
3. श्रीप्रिया – प्रियतम के केलि विलास का दर्शन करना।

निशाकालीन सेवा

1. श्रीप्रिया – प्रियतम को भोजन के लिये ब्यारू कुंज ले जाना।
2. दोनों को ब्यारू भोग आरोगवाना।
3. दोनों को केसर, इलायजी, मिश्री मिश्रित दूध पिलाना।
4. दोनों को आचमन कराके सरस पान बीड़ा समर्पण करना।
5. शयन आरती उतारना।
6. शयन कुंज में शैया सजाना।
7. इत्र आदि सुगंधित द्रव्यों से सम्पूर्ण शयन कुंज का संस्कार करना।
8. श्रीप्रिया – प्रियतम को शयन के लिये शैया पर पधराना।
9. स्नेहयुत चरण पलोटना।
10. सोये जान कुंज से बाहर आकर द्वार पे चिक डालना।
11. रंध्रों से श्रीप्रिया – प्रियतम के दर्शन करना।
12. मंद स्वर से श्रीप्रिया – प्रियतम के केलि विलास का गायन करना।

ब्याहुला उत्सव

1. सर्वप्रथम ब्याहुला कुंज की प्रथम कुंज में प्रिया – प्रियतम श्रीराधाकृष्ण को श्वेत परिधान धारण कराके श्वेत मणियों से श्रृंगार करना।
2. द्वितीय कुंज में दोनों का रास – विलास करते हुए दर्शन करना।
3. ब्याहुला कुंज की तीसरी कुंज में दोनों का विवाह उत्सव विधिपूर्वक मनाना।
4. ब्याहुला कुंज की चौथी कुंज में दोनों की केलि विलास का दर्शन करना।

5. ब्याहुला कुंज की पाँचवी कुंज में दोनों को सिंहासन पर पधराकर यशगान करना।

6. श्रीप्रिया–प्रियतम से पारितोष रूप में उनके निज अंगों का श्रृंगार ग्रहण करना।

7. श्रीप्रिया–प्रियतम की प्रसादी पान बीड़ी ग्रहण करना।

8. मोहन महल व शैया को मणिमय पुष्पों से सुसज्जित करना।

9. दोनों को रात्रि शयन के लिये कुंज महल की सर्वतोभद्रनी शैया पर पधराना।

10. दोनों की चरण सेवा करना।

11. सोये जानकर धीरे–धीरे बाहर आना।

12. चिक डालकर धीरे से द्वार बंद करना।

13. झरोखों के रंध्रों से श्रीप्रिया–प्रियतम की रूप सुधा माधुरी का रसास्वादन करना।

14. सगुन मनाते हुए गाते–बजाते यूथेश्वरी श्रीरंगदेवी जू व अन्य सखियों के संग सुखदा कुंज आना।

15. श्रीरंगदेवी जू व अन्य सखियों के साथ उत्साह पूर्वक वादन नृत्य करते हुए श्रीप्रिया–प्रियतम की मधुर लीलाओं का गान करना।

16. श्रीरंगदेवी जू से विदाई लेकर गुरु रूपा सखी के साथ उनकी कुंज में आना।

17. गुरु रूपा मंजरी से विदाई लेकर उनके ही बगल में अपनी कुंज में आना।

181. श्रीप्रिया–प्रियतम की माधुर्यमयी लीला का चिंतन करते हुए शैया पर लेटना।

19. निद्रा अवस्था में भी श्रीप्रिया–प्रियतम की दिनभर की रस लीलाओं को स्वप्न में देखना।

इस प्रकार साधक गुरु कृपा प्राप्त करके अंतश्चिंतित सखी देह धारण कर नित प्रति गुरु आदेशानुसार श्रीराधाकृष्ण की अष्टकालीन लीलाओं का चिंतन करता हुआ सेवा सुख का रसास्वादन करे।

सर्वोपरि श्री वृंदावन धाम

आज पूज्य श्री महाराज जी ने मुझे श्रीरूप रसिक जी द्वारा रचित दोहे की एक पंक्ति सुनाते हुए कहा– '**सबसों पर गोलोक है, ताते पर बनराज**। गोलोक धाम सब धामों से ऊपर है और इससे भी ऊपर स्वतंत्र रूप से बनराज वृंदावन है। सद्ग्रन्थों में जहाँ–जहाँ इस बात की पुष्टि होती है, उन सबका प्रमाण देकर एक लेख तैयार करो।'

पूज्य श्रीमहाराज जी की आज्ञा एवं कृपा का आश्रय लेकर लेख के रूप में शास्त्रों के प्रमाण संग्रह करके छोटीसी कोशिश की जा रही है। भूल के लिए लिखने से पहले ही क्षमा चाहता हूँ।

बरनत की बुधि होत है बौर ।
दौरत बहुत बिसाल बिपिन में जहँ लगि कहियत मन की दौर।।
सूर के नीचे न सेस कें ऊपर गोपुर हू तें अगोचर ठौर।
श्रीहरिप्रिया बिराजत हैं तहाँ जुगलकिशोर सकल सिरमौर।।

(महावाणी सिद्धान्त सुख, पद 29)

नित्य वृंदावन धाम का क्या वर्णन करूँ? वर्णन करने में बुद्धि बौरा (बेसमझ) जाती है। जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक मन दौड़ता है, समस्त ब्रह्माण्डों में घूम–घूमकर वापिस आ जाता है। उसे श्रीवृंदावन धाम का कहीं भी पता नहीं लगता है क्योंकि यह धाम न तो सूर्य के नीचे और न शेषनाग के फन के ऊपर है अर्थात् अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों में कहीं भी नहीं है। यह धाम तो गोपुर (गोलोक) से भी ऊपर है। इस अगोचर स्थान में युगल किशोर विराजते हैं जो सबके सिरमौर हैं।

वृंदावनं महत्पुण्यं सर्व पावन पावनम् ।
सर्व लोक बहिर्भूतं निराधारं परिस्फुटम् ।।

(सनकादिक संहिता पटल 31 श्लोक 22)

वृंदावन की बड़ी महिमा है। यह पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है। यह सब लोकों से बाहर निराधार स्थित है।

गतो राधापति स्थानं यत्सिद्धैरप्य गोचरम् ।
ततश्च तदुपादिष्टो गोलोकादु परिस्थितम् ।।

नित्य वृंदावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम् ।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ।।

(पद्म पुराण पाताल खण्ड)

वह (अर्जुन) फिर श्रीप्रिया–प्रियतम के उस स्थान में पहुँचा जो सिद्धों के लिए भी अगोचर है। जिसकी स्थिति गोलोक से भी ऊपर है। जिसका नाम नित्य वृंदावन है। जहाँ रास आदि नित्य उत्सव होते रहते हैं। जो स्थान अत्यन्त गुप्त, अदृश्य तथा पूर्ण प्रेम रसात्मक है।

पञ्चयोजनमेवास्ति वनमे देह रूपकम्

(गौतमी तंत्र)

पाँच योजन (साठ कि.मी.) परिमाण वाला श्रीवृंदावन मेरी देह स्वरूप है।

तत्स्थानं कोटि ब्रह्माण्ड महाशून्यादिलक्षणम् ।
मानं तस्यापि किमपि विद्यते नैव शांभवि ।।

(आलमन्दार संहिता)

भगवान् शिव कहते हैं–'हे पार्वती! श्रीनित्य वृंदावन कोटि–कोटि ब्रह्माण्डों युक्त महाशून्य (अनन्त भगवद्धामों) से विलक्षण है। उस धाम की कोई धाम समता नहीं कर सकता।

तिन महाशून्य के शिखर पर तेज कौ
कोटि गुनतें गुनों अति अमित विस्तार ।
तहाँ निज धाम वृन्दा विपिन जगमगैं
दिव्य वैभवन कौ दिव्य आगार ।।

(महावाणी सिद्धान्त सुख)

उन महाशून्यों के शिखर पर अर्थात् श्री गोलोक के ऊपर तेज का कोटि गुणा से भी गुणा अमित विस्तार है अर्थात् एक असीम तेजमय लोक है। वहाँ ही अनन्त वैभवशाली नित्य धाम वृंदावन विराजमान है।

स्कन्ध पुराण के वैष्णव खण्ड में वर्णित है–'श्रीनारद जी ने श्री दामा को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से चतुष्कोण स्थान (परव्योम में महावैकुण्ठ के अन्तर्गत चर्तुव्यूह लोक अनिरूद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव लोक) के भीतर प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने एक महान् दिव्य तेज

को देखा मानो करोड़ों सूर्य एक काल में ही उदय हो रहे हों। वह तेज नीचे – ऊपर सब दिशाओं में व्याप्त है। फिर उन्होंने उस तेज को पार करके श्रीकृष्ण की कृपा से ब्रह्मपुरी के दर्शन किए। इसे वैष्णव लोक गोलोक कहते हैं। यहाँ ही गोपी – गोप तथा गौएँ रहती हैं। वही लोग यहाँ के दर्शन कर सकते हैं जिन पर श्रीकष्ण की कृपा होती है अन्यथा यहाँ निराकार प्रकाश – ही – प्रकाश दिखाई देता है। गोलोक के दर्शन करने के बाद नारद जी ने एक ऐसे अद्भुत दिव्य महल के दर्शन किए जो अनेक प्रकार की विचित्र मणियों से जड़ित होने से अति सुन्दर है। जिसमें हजारों मणिमय स्तम्भ हैं और जो सभा मंडप आदि से सुशोभित है, यही वृंदावन है।'

बन्धन मुक्ति से परे, धेनु लोक सिरमौर ।
आगे श्री बनराज महुँ, रंग बाग मम ठौर ।।

(पूज्य महाराज जी)

बन्धन (माया), मुक्ति (कैवल्य मोक्ष) से आगे सब धामों का सिरमौर गोलोक धाम है। इसके आगे वनराज वृंदावन में युगल दम्पत्ति की प्रिय सखी अग्रवर्त्ति यूथेश्वरी श्री रंगदेवी जी के प्रिय रंग बाग में मेरा आवास है।

वृंदावन विहारेषु कृष्णं किशोर विग्रहम् ।
अन्यारण्येषु स्थानेषु बाल्य पौगण्ड यौवनम् ।।

(पद्म पुराण)

श्री वृंदावन की लीलाओं में श्रीकृष्ण का नित्य किशोर (दस से पंद्रह वर्ष तक की अवस्था) स्वरूप है। अन्य वन तथा स्थानों में उनकी अवस्था कहीं बाल (पाँच वर्ष तक की अवस्था), कहीं पौगण्ड (पाँच से दस वर्ष तक की अवस्था) और कहीं यौवन (पंद्रह वर्ष के बाद की अवस्था) है।

इससे यह सिद्ध होता है कि किशोर अवस्था की लीला केवल वृंदावन में ही होती है अन्य स्थलों पर नहीं।

सूछम कलरव जन्य पर,वेद तंत्र कौ मंत्र ।
श्रीवृंदावन हरिप्रिया, नित्य बिहार स्वतंत्र ।।

वेद तंत्र को मंत्र मनोहर श्रीवृंदावन नित्य विहार ।
सूछम कलरव जन्य ब्रह्म पर परमधामकौ परमाधार ।।

(महावाणी सिद्धान्त सुख)

श्री वृंदावन एवं नित्य विहार शब्द ब्रह्म का जनक है। वही प्राकृत तथा अप्राकृत वैकुण्ठ आदि लोकों का व उनके अधिपतियों का परम आधार है।

नित्यं वृंदावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम् ।
पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ।
वैकुण्ठादितदंशाशं स्वयं वृन्दावनम् भुवि ।।

(पद्म पुराण पाताल खण्ड)

जिस वृंदावन का स्वरूप पूर्ण ब्रह्म, पूर्ण सुख, पूर्ण ऐश्वर्य, नित्य आनन्द तथा अविनाशी है, वह सब ब्रह्माण्डों से ऊपर विराजमान है। वैकुण्ठादि भगवद्धाम भी श्रीवृंदावन के एक अंश-के-अंश हैं। यह वृंदावन पृथ्वी पर अभेद रूप से स्थित है। यह वृंदावन भूलोक स्थित वृन्दावन से अलग नहीं है।

सर्वलोक सिरमौर ब्रज सो भू पै प्रकटाय ।
भू तजि ब्रज नहिं सेवहीं ताके भाग रिसाय ।।

स्कन्ध पुराण में ही एक स्थल पर और श्रीवृंदावन धाम को स्वतंत्र रूप से सब लोकों के ऊपर वर्णन किया गया है। भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं-

'विशुद्धात्मा साधक पहले इस प्रपंच लोक (ब्रह्माण्ड) में एक-एक लोक का क्रम से ध्यान करे। फिर ब्रह्माण्डान्तर्गत ब्रह्मलोक एवं वैकुण्ठ का स्मरण करे। इसके बाद ब्रह्माण्ड से बाहर माया की अंतिम सीमा पर असीम उस विरजा नदी (कारण समुद्र) का ध्यान करे। इस विरजा नदी के ऊपर कैवल्य मुक्ति पद का स्थान है। जहाँ ऋषियों, मुनियों एवं ज्ञानियों की मुक्ति होती है। उसके ऊपर महावैकुण्ठ लोक है जहाँ के निवासी सब नित्य हैं। इसी महावैकुण्ठ में क्रम से अनिरूद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण तथा वासुदेव यह चर्तुव्यूह के चार लोक हैं। इनका

स्मरण करना चाहिए (इस महावैकुण्ठ के अन्तर्गत ही समस्त भगवद्धाम एवं अवतार आ जाते हैं)।'

इन सब धामों के ऊपर श्रीवृंदावन का स्वतंत्र रूप से वर्णन करते हुए अब भगवान् शिव कहते हैं– 'हे पार्वती! साधक पहले श्रीकृष्ण की प्यारी यमुना जी का ध्यान करे जो निर्मल तथा सब ऋतु में सुख देने वाली है, जिसका वर्ण नीलकमल के समान है। जिसके तट, कुंजों द्वारा सुशोभित हैं। जिसके बीच में गोपियों के बिहार करने के मण्डप हैं। जिसके दोनों तट स्वर्ण मण्डित व रतनों से जड़ित हैं। जहाँ स्वर्ण कमल खिल रहे हैं।

इस प्रकार यमुना जी के तट पर उस वृंदावन का ध्यान करे जो नित्य नूतन पुष्पों से सुशोभित होने से सबको सुखास्पद है। जहाँ के सुख ब्रह्मान्द से भी अधिक सुख प्रदान करने वाले हैं। जहाँ अनेक प्रकार के चित्र–विचित्र पक्षी मधुर कलरव कर रहे हैं। जहाँ भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। जहाँ की भूमि स्वर्णमयी होने से दैदीप्यमान हो रही है। जहाँ के तरु एवं लताएँ सब ऋतुओं में होने वाले फल–फूलों को नित्य प्रदान करती हैं। जो चारों ओर अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित है। जहाँ यमुना जल को स्पर्श करती हुई शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बह रही है। इस प्रकार साधक श्रीप्रिया–प्रियतम के विलास स्थल श्रीवृंदावन का स्मरण करे।'

ध्यावो वृन्दावन रस धाम ।
कुंजनिकुंज ललित बन वसुधा,खग मृग अलि द्रुम बेलि ललाम।।
फुलवारी बन बाग बगीचे, मग चौमग मन अति अभिराम।
यमुना सरवर हौज ह्रदनियाँ, मारग लघु सरि दच्छिन बाम।।
शीतल मंद सुगंध पवन सुख, सब रितु राज बसत इहि ठाम।
करुण दास इहँ काल न व्यापै, नित्य विराजत श्यामा श्याम।।

–किशोरी शरण

सुन सखि! प्रेम नगर की बात

सुन सखि! प्रेम नगर की बात ।
माया ते अति परे अष्ट पुर, ताते पर यह नगर सुहात ।।
अचल अचिंत अलौकिक अनुपम, अगुण अमरपुर अति अवदात ।
अमल अनादि अनंत अपारा, अगम अगोचर कह्यो न जात ।।
रसमय धाम प्रिया प्रियतम को, निस दिन होत प्रेम बरसात ।
सुधि बुधि भूलि मगन सब रस में, प्रेम आनन्द न हिय समात ।।
चिन्मय दिव्य हेममइ धरनी, मणिमय कुंज भवन चमकात ।
पटतर खोज मिले नहिं अद्भुत, याको वर्णन है न सकात ।।
जहाँ काल नहिं तोउ होत हैं, रैन दिवस संध्या परभात ।
षट रितु श्री वन नित्य विराजति, राज बसंत करत दिन रात ।।
ऋषि मुनि ज्ञानी योगी दुर्लभ, प्रेमाभगती सों साक्षात ।
करुण दास शरणागत जन कूँ, गुरू कृपा सों मिले बलात ।।

सुन सखि! प्रेम नगर की बात

सखी! तुम पहली बार इस प्रेम नगर 'वृन्दावन' में आई हो, इसलिए इस प्रेम नगर को देखकर आश्चर्य चकित हो रही हो और जिज्ञासा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी हो। चलो आओ! तुम्हें यहाँ के कुछ रहस्य खोलकर बताऊँ और साथ–ही–साथ यहाँ के दर्शन भी कराऊँ।

देखो! ये अप्राकृत धाम है। चिन्मय होने पर भी लीला सम्पादन के लिए जड़वत दिखाई देता है। वस्तुतः यह जड़ नहीं है, चैतन्य है, भगवत् रूप ही है। यहाँ की स्वामिनी सर्वेश्वरी श्रीराधा रानी हैं जो अपने प्रियतम रसिक सिरोमणि श्रीकृष्ण के साथ नित्य विहार मग्ना रहती हैं। अनन्त सखी परिकर ही इनकी प्रजा है। देखो! यहाँ रसराज श्रीकृष्ण के सिवा कोई भी पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता। ये महाभाव स्वरूपा श्रीराधा रानी का निज महल है। इस वृन्दावन का क्षेत्रफल पाँच योजन (60 कि. मी.) विस्तार वाला है। इसके चारों ओर कंकणाकार (गोलाकार) निर्मल जल परिपूरित श्रीयमुना जी प्रवाहमान हैं। इस वन की भूमि अनन्त दल कमल के आकार की है।

देखो! श्रीयुगल सरकार या उनके प्रेमी जनों की कृपा के बिना यहाँ कोई प्रवेश नहीं कर सकता। कोई कितना ही, बड़े–से–बड़ा साधन सम्पन्न क्यों न हो, बिना कृपा के यहाँ पहुँचना असम्भव है और वह कृपा दीनों पर ही होती है, अभिमानियों पर नहीं। तुम पर निकुंजेश्वरी श्रीराधा रानी एवं सर्वेश्वर श्रीकृष्ण व उनके प्रेमी संतों की कृपा हुई है। तभी तो तुम आज यहाँ पहुँच गई हो।

यह लोक दिव्यातिदिव्य, त्रिगुणातीत एवं ज्ञानातीत है। इसलिए दिव्य लोकों में रहने वाले देवता एवं त्रिगुणमयी माया विजयी तथा ज्ञान की चर्मावस्था में पहुँचे हुए योगी, ऋषि, मुनि, ज्ञानी भी इस धाम में प्रवेश नहीं कर पाते। क्योंकि ये सब भुक्ति एवं मुक्ति के तो अधिकारी हैं, लेकिन इस लोकातीत प्रेमनगर वृन्दावन के अधिकारी नहीं हैं। यह स्थान मुक्ति से भी परे है। यह स्थान मुक्ति से परे इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहाँ प्रेम का बन्धन है और बन्धन से परे इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहाँ माया जनित बन्धन नहीं है। इसलिए यहाँ बन्धन, मुक्ति से आगे की बात है।

देखवो सखी! इस प्रेमनगर की बात निराली है। इसके भिन्न-भिन्न भागों में प्रिया-प्रियतम एवं सखी परिकर भिन्न-भिन्न प्रकार की रसमयी लीलाओं में क्रीड़ारत रहते हैं। यह लीला विहार अनादि काल से अनन्त काल तक नित्य प्रवाह रूप से चलता रहता है, कभी बंद नहीं होता। किसी प्रकार का प्रलय इस प्रेम नगर का स्पर्श नहीं कर सकता। इसलिए प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव के आदि-अन्त रहित इस बिहार को नित्य बिहार कहते हैं। सखी! मेरी बात सुनकर तुम आश्चर्य क्यों करती हो? तू पहली बार आई है ना। देखवो! जैसे भगवान् नित्य हैं, वैसे ही उनकी लीला भी नित्य है। यहाँ प्रकृति और प्राकृत गुणों का प्रवेश नहीं है। यहाँ सब कुछ चिन्मय ही चिन्मय है। इतना तो तुम जानती ही होगी कि चिन्मय तत्त्व का कभी नाश नहीं होता। जैसे भगवद् विग्रह चिन्मय है, वैसे ही धाम व धाम के परिकर भी चिन्मय हैं। यहाँ जड़ता का लेश मात्र भी नहीं है। इसलिए इस परम चैतन्य धाम के सम्बन्ध में हम यों भी कह सकते हैं कि यहाँ सब कुछ भगवान् ही भगवान् हैं क्योंकि चिन्मय तत्त्व केवल भगवान् ही हैं, शेष सब जड़ तत्त्व है।

हे मेरी प्यारी सखी! अधिक उतावली न हो, धैर्य रख। मैं तुम्हें यहाँ का एक-एक मार्ग, चौराहा, कुंज-निकुंज, सरोवर, यमुना घाट आदि सब कुछ दर्शन कराऊँगी। परंतु इससे पहले एक बात ओर सुन लो - इस प्रेम नगर में जागतिक काल की गति तो है नहीं, इसलिए यहाँ एक ही समय में कहीं बसंत, कहीं वर्षा, कहीं शरद, कहीं शिशिर तो कहीं

हेमन्त ऋतु वर्तमान रहती है। एक ही समय में कहीं सूर्योदय, कहीं दोपहर, कहीं संध्या तो कहीं रात्रि होती है। सखी! इस प्रेम नगर की ऐसी -ऐसी अद्‌भुत, अलौकिक बाते हैं जो तुम सुनकर आश्चर्य चकित हो जाओगी।

देखो! प्रातः के बाद दोपहर, फिर संध्या तत्पश्चात् रात्रि तो होती ही है। यह तो तुम्हारा अपना अनुभव है ही, लेकिन यहाँ पर ऐसा नहीं है। प्रकृति के नियम यहाँ लागू नहीं होते। यहाँ कभी-कभी लीला सम्पादन के लिए काल गति उल्टी-पुल्टी होने लगती है। दोपहर के बाद संध्या न होकर दोबारा प्रातः होने लगता है। जानती हो सखी क्यों? मेरी बात को ध्यान से सुनना।

देखो सखी! ये अकाल पुरुष का देश है। इसलिए यह कालातीत है। उसके व उसके धाम एवं परिकरों पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि काल की यहाँ तक पहुँच नहीं है। सखी! अब तुम सोच रही होगी कि अगर यहाँ काल का प्रवेश नहीं है फिर प्रातः, दोपहर, संध्या व रात्रि कैसे होती है? यहाँ ऋतुएँ कैसे बदलती हैं, इन सबका कारण तो काल ही होता है।

देखो सखी! मैंने तुमसे कहा ना कि यहाँ सब कुछ अप्राकृत है, चिन्मय है। यहाँ प्राकृत जड़ जगत की किसी भी वस्तु का प्रवेश नहीं है। यहाँ का जो काल है वह भी अप्राकृतिक एवं चिन्मय है, भगवत् रूप ही है। इस प्रेम नगर में सब कुछ एक ही परम चैतन्य तत्त्व भगवान् हैं। यहाँ सब कुछ उन्हीं की इच्छा पर निर्भर है। यहाँ किसी प्रकार का कोई कर्म बन्धन नहीं है। तभी तो लीला सम्पादन के लिए काल गति आगे-पीछे होने लगती है।

मेरी प्यारी सखी! काल के सम्बन्ध में एक ओर यहाँ की बात सुनो! यहाँ का कालमान भी ब्रह्माण्डों के समस्त लोकों से अलग है। अलग-अलग लोकों का अलग-अलग कालमान होता है।

सखी! जिस भूलोक से तुम आई हो वहाँ बारह मास का एक वर्ष होता है। भूलोक के बारह मास स्वर्ग के एक दिन-रात के बराबर होते हैं। देवताओं के इस समय का परिमाण भूलोक के समय के परिमाण से तीन

सौ साठ गुना अधिक होता है। भूलोक के तीस वर्ष देवताओं का एक महीना, भूलोक के तीन सौ साठ वर्ष देवताओं के एक वर्ष के बराबर होते हैं। देवताओं के इस एक वर्ष को ही दिव्य वर्ष कहते हैं। ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दिव्य युग होता है। देवताओं के बारह हजार दिव्य वर्षों के इस दिव्य युग में मानवों के भूलोक में चारों युग (सत, त्रेता, द्वापर, कलि) एक-एक बार बीत जाते हैं। देवताओं के दिव्य युग को ही मनुष्य की भाषा में एक चतुर्युगी कहते हैं। ऐसे एक हजार दिव्य युगों (चतुर्युगी) का ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतने ही दिव्य युगों की एक रात्रि होती है।

कलियुग से दुगनी आयु द्वापर की, कलियुग से तिगुनी त्रेता की एवं कलियुग से चौगुनी सतयुग की होती है। इसको इस प्रकार भी समझा जा सकता है -

कलियुग की आयु 4,32,000 वर्ष (1200 दिव्यवर्ष)
द्वापर की आयु 8,64,000 वर्ष (2400 दिव्य वर्ष)
त्रेता की आयु 12,96,000 वर्ष (3600 दिव्य वर्ष)
सतयुग की आयु 17,28,000 वर्ष (4800 दिव्य वर्ष)

कुल जोड़ - 43,20,000 वर्ष (12,000 दिव्य वर्ष)

43 लाख बीस हजार वर्ष (12,000 दिव्य वर्ष) की आयु वाले चारों युग ब्रह्मा के एक दिन में हजार बार बीत जाते हैं। इस हिसाब से ब्रह्मा के एक दिन में भूलोक के 4,32,00,00,000 (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष होते हैं। इतने समय की ही ब्रह्मा की रात्रि होती है। इस प्रकार ब्रह्मा जी के दिन व रात्रि मिलाकर मानवों के 8,64,00,00,000 (आठ अरब चौंसठ करोड़) वर्ष बन जाते हैं। ब्रह्मा के दिन को कल्प व रात्रि को प्रलय कहते हैं। जितने समय तक कल्प (सृष्टि) रहता है, उतने समय तक ही प्रलय भी रहता है। प्रलय के समय समस्त सृष्टि सूक्ष्म रूप से ब्रह्मा में लीन हो जाती है। फिर ब्रह्मा जी की रात्रि (प्रलय) बीत जाने पर ब्रह्मा जी जगते हैं। जगते ही कल्प (सृष्टि) प्रारम्भ हो जाता है। पूर्व कर्मों के अनुसार जीव सृष्टि में जन्म लेता है।

हे सखी! यह ब्रह्मा का एक दिन–रात का कालमान बताया। इस एक दिन के कालमान के अनुसार तीस दिन का एक महीना एवं बारह महीने का एक वर्ष होता है। सौ वर्ष की ब्रह्मा की पूर्ण आयु होती है। इस प्रकार ब्रह्मा की पूर्ण आयु में 36000 बार पृथ्वी में प्रलय आती है। चाहे ब्रह्मा जी की कितनी ही लम्बी आयु क्यों न हो, है तो काल की सीमा में बद्ध ही। ब्रह्मा का जीवन व उनका लोक भी सीमित तथा काल की अवधि वाला है। इसलिए वह भी अनित्य है, विनाशी है। जब वही अनित्य है तो उसके नीचे के स्वर्ग आदि लोक व उनमें रहने वाले प्राणियों के शरीर अनित्य हों, इसमें कहना ही क्या है।

सखी! सुन रही हो ना? ध्यान से सुनोगी तभी मेरी इस बात को ठीक समझ पाओगी जो मैं अब कहने लगी हूँ। अलग–अलग ब्रह्माण्डों के अलग–अलग लोकों में कालमान अलग–अलग होता है। समस्त लोक, काल के आधीन हैं और उन लोकों का काल भी स्वतंत्र नहीं है। वह भी भगवान् के बनाए नियमों में बंधा है। इसलिए नियम के अनुसार ही काल अपना कार्य करता है। प्रात: के बाद दोपहर, फिर शाम होगी। ऐसा नहीं कि काल नियम तोड़े और दोपहर के बाद शाम की जगह प्रात: हो जाए। लेकिन सखी! दूसरे लोकों के कालक्रम की तरह यहाँ का कालक्रम ऐसा नहीं है। इस प्रेम नगर में काल के अनुसार लीला नहीं होती बल्कि लीला के अनुसार काल गतिशील होता है, दिन–रात होते हैं, ऋतुएँ बदलती हैं।

सखी! यहाँ शरद ऋतु में अगर किसी के मन में सरोवर देखकर जल–बिहार करने की इच्छा हो आये तो उसी समय यहाँ शरद ऋतु के स्थान पर ग्रीष्म ऋतु का प्रादुर्भाव हो जाता है। और सखी! जो मैं अब बताने जा रही हूँ, वह बात यह है कि यहाँ का कालमान अन्य लोकों की तरह सुनिश्चित नहीं है। कम–अधिक होता रहता है। भूलोक में तो चार प्रहर का दिन व चार प्रहर की रात्रि होती है। लेकिन इस प्रेम नगर में ऐसा नहीं है। यहाँ कभी चार–चार प्रहर के दिन–रात और कभी इससे कम या अधिक भी होते रहते हैं। यहाँ कभी काल का संकुचन व कभी विस्तरण होता रहता है। कभी छह महीने की एक रात्रि तो कभी हजारों रात्रियों का

केवल एक ही पल बन जाता है।

सखी! यहाँ कालमान के अनुसार कई प्रकार की कुंजे हैं। कुछ कुंजों में तो काल स्थिर ही रहता है। वहाँ हर समय एक ही समय रहता है। काल गति नहीं करता। प्रात: है तो हर समय प्रात: ही रहेगा। कभी दोपहर होता ही नहीं। किसी कुंज में संध्या है तो संध्या ही रहती है। किसी कुंज में रात्रि है तो रात्रि ही रहती है। उस कुंज में कभी दिन ही नहीं होता। और हे सखी! बहुत सी ऐसी भी कुंजे हैं जहाँ काल प्रवाहमान है, गतिशील है। भूलोक की तरह एक ही स्थान पर प्रात:, दोपहर, शाम, रात्रि के रूप में समय बदलता रहता है। और सखी! किसी-किसी कुंज में तो काल का कोई हिसाब ही नहीं। कभी काल स्थिर हो जाता है, कभी गतिशील तो कभी काल की गति उल्टी-पुल्टी भी होने लग जाती है। जब ऐसा होता है तो दोपहर के बाद संध्या न होकर फिर प्रात: होने लगता है।

सखी! इस प्रेम नगर के चिन्मय आकाश में जो सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं उनकी भी यही स्थिति है। कभी सूर्य पश्चिम की ओर बढ़ता है, कभी स्थिर हो जाता है तो कभी वापिस पूर्व की ओर जाने लगता है। जानती हो सखी क्यों? क्योंकि यहाँ सब कुछ लीला के अनुसार होता है और लीला इच्छा के अनुसार। मैंने बताया ना कि यहाँ काल के अनुसार लीला नहीं होती बल्कि लीला के अनुसार काल चलता है।

हाय सखी! ये क्या हो गया मेरी मति को। मैं तो भूल ही गई कि तुम इस प्रेम नगर में पहली बार आई हो। खाने-पीने की कौन कहे, तुम को बैठने तक के लिए भी नहीं कहा। मेरी इस भूल का कारण भी सखी तुम ही हो। यहाँ आते ही तुम वृंदावन को देखकर आश्चर्य भरी मुद्रा एवं जिज्ञासा भरी दृष्टि से मुझे जो देखने लगी थी। तुम्हारी इस जिज्ञासा को देखते ही मैं शिष्टाचार भूल गई और तुम्हारी मनभाई करने की उतावली में बोलने लगी, तो बोलती ही चली गई।

वैसे भी सखी ये प्रेम नगर है। प्रेम नगर में भला शिष्टाचार को स्थान ही कहाँ है। यहाँ तो सभी का तत्सुख सुखिया भाव है। दूसरे का सुख ही अपना सुख है, दूसरे की इच्छा ही अपनी इच्छा है। सखी! यहाँ तन भले ही सबके अलग-अलग हैं लेकिन मन सबका एक ही होता है।

यहाँ के राजा प्रेम देव ने सभी के मन को एकमएेक कर रखा है। इसलिए जो एक के मन में इच्छा होती है वही सबके मन में प्रतिबिम्बित होने लगती है।

सखी! देखो तुम्हारे बगल में बैठने के लिए आसन है, इस पर बैठो। अब इसको देखकर आश्चर्य ना करना कि ये आसन अब तक तो यहाँ नहीं था, अभी कहाँ से आ गया? देखो सखी! ये वृंदावन काम रुप है। यहाँ का प्रत्येक वृक्ष कल्पवृक्ष व प्रत्येक लता कल्पलता है। यहाँ की प्रत्येक मणि चिन्तामणि को भी तिरस्कृत कर देने वाली है। इसलिए यहाँ पर जैसा मन में विचार आता है, वैसा ही अपने-आप होने लगता है। देखो सखी! तुम्हारे आसन पर बैठते ही तुम्हारे सामने प्रिया-प्रियतम (श्रीराधाकृष्ण) का भुक्त प्रसाद मणि जड़ित कंचन थाल में स्वत: ही आ गया। तुमको तो यहाँ पल-पल ही चमत्कार जैसा लगेगा। लेकिन हम सखियाँ यहाँ इतनी रचपच गई हैं कि हमको यहाँ चमत्कार जैसा कुछ भी नहीं लगता। सब कुछ स्वाभाविक ही लगता है। अनादि काल से यहाँ की प्रकृति ऐसी ही अलौकिक, चमत्कारी एवं अह्लादकारी है।

मेरी प्यारी सखी! अपने बगल में ऊपर की तरफ देखो। जानती हो, इस कदम की एक डाली पर अमरुद व दूसरी डाली पर आम क्यों लगे हैं? क्योंकि तुमको प्रशाद पाते देख मेरे मन में तुमको ताजे अमरुद व आम खिलाने का विचार जो हो आया है, ये उसी का परिणाम है। यहाँ के वृक्ष भी तत्सुख सुखिया भाव से ही भावित रहते हैं और हर समय अपनी सारी सम्पत्ति को सेवा में लगाने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। यहाँ के वृक्ष ही नहीं बल्कि कण-कण अनन्तानन्त ऐश्वर्यों से भरा है। यहाँ वृक्ष के एक पत्ते के वैभव के आगे कोटि-कोटि वैकुण्ठों का ऐश्वर्य भी फीका पड़ जाता है।

सखी! ये वृक्ष तुमको जितना बड़ा व जिस प्रकार का दृष्टिगोचर हो रहा है, ये केवल ऐसा ही नहीं है, ये लीला के अनुसार पल-पल अपना आकार व प्रकार बदलता रहता है। सखी! यहाँ के वृक्ष केवल फूल व फल ही नहीं देते बल्कि लीला के अनुरुप जिस सेवा सामग्री की आवश्यकता होती है, ये वही प्रदान कर देते हैं। इस प्रेम धाम में कोई बाजार थोड़े ही

है। यहाँ सब कुछ श्रीवन में स्वत: ही मिल जाता है। इच्छा होते ही यहाँ सब कुछ सामने प्रकट हो जाता है।

यद्यपि यहाँ कल्पवृक्ष स्वरूप वृक्षों में छहों ऋतुएँ वर्तमान हैं फिर भी प्रधानता बसंत ऋतु की ही रहती है।

सखी! यहाँ ऐसे भी वृक्ष हैं जो मणियों से निर्मित हैं जिनकी मूल शाखा, पत्र, पुष्प व फल सभी मणिमय हैं। नीलमणि, वैदुर्यमणि, चन्द्रकांत मणि, सूर्यमणि, स्फटिकमणि, कौस्तुभ मणि आदि –आदि बहुत प्रकार की मणियों से निर्मित अनेक प्रकार के रंग–बिरंगे वृक्षों से यहाँ की शोभा प्रतिक्षण वर्धमान रहती है। यहाँ मणिमय वृक्ष कृत्रिम नहीं है। इनके मणिमय बीजों को रोपण करने पर नए वृक्ष उगने लग जाते हैं।

यहाँ किसी भी वस्तु व स्थान का आकार सीमित नहीं होता। लीला सम्पादन के लिए बढ़ता–घटता रहता है। इस वृंदावन में जहाँ आज आम का बगीचा है वहाँ कल कटहल का बगीचा भी हो सकता है और जहाँ आज अनार वन है वहाँ कल कदली वन भी हो सकता है। यहाँ किसी भी तरू व लता पर कोई भी फूल व फल लग सकता है।

जहाँ अब मणिमय कुंज दिखाई दे रही है वहाँ कल लीला हेतु सरोवर भी प्रकट हो सकता है। जिस सरोवर का आकार आज चकोर है वह कल अष्टकोण भी हो सकता है। सरोवर के स्थान पर कन्दुक क्रीड़ा के लिए हरी–हरी दूब का विशाल मैदान भी प्रकट हो सकता है। यहाँ के कुंज, निकुंज, सरोवर, बाग आदि क्रीड़ा स्थल लीला अनुसार प्रकट व तिरोहित होते रहते हैं। इस वन में अनन्त क्रीड़ा स्थल हैं लेकिन हर समय प्रकट नहीं दिखाई देते। लीलानुरूप ही प्रकट होते और लीला संपादन के बाद अंतर्धान हो जाते हैं।

सखी! यहाँ का ऐश्वर्य अपार है। भला कहीं अपार का भी पार पाया जा सकता है। इस निकुंज वृंदावन की हर वस्तु हर वस्तु में व्यापक रहती है, हर स्थल हर स्थल में समाया रहता है। या यों कहो यहाँ की हर वस्तु सर्वव्यापक है। यहाँ सब कुछ सीमातीत, कालातीत व देशातीत है। यहाँ सब कुछ लीलानुसार बदलता रहता है लेकिन मिटता कुछ नहीं। इसलिए यह नित्य होते हुए भी सदा नवीन बना रहता है।

सुनो सखी! पूरे ब्रह्माण्ड में केवल एक ही कौस्तुभ मणि है और वह है वैकुण्ठाधिपति श्रीहरि के कंठ में, जो उनके हृदय पर झूलती रहती है। यहाँ का वैभव तो देखो, यहाँ ऐसी–ऐसी सुदुर्लभ अनेक प्रकार की कौस्तुभ मणियों से यमुना व सरोवरों के घाट बने हैं। यहाँ की स्वर्णमयी दिव्य भूमि में न जाने कितनी प्रकार की कौस्तुभ मणियाँ जड़ी हैं। यहाँ की समस्त मणियाँ कोमल, सुचिक्कन एवं सुगंधित होती हैं। यहाँ की मणियों में कठोरता बिल्कुल भी नहीं होती। यहाँ जल के फव्वारे की तरह ही कई प्रकार की मणियों के फव्वारे, पुष्पों के फव्वारे भी होते हैं। यहाँ पर कहीं इत्र के सुगंधित फव्वारे तो कहीं प्रकाश कणों के फव्वारे बरबस मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

सखी! कहने को तो यह वृंदावन पांच योजन (60 कि. मी.) विस्तार वाला है लेकिन इसके पांच योजन में ही अनन्त योजन का विस्तार है। मन के समान तीव्र गति से चलने वाले यान के द्वारा चलने पर अनंत काल तक चलते रहने पर भी इसके पांच योजन समाप्त नहीं हो सकते अर्थात् इसके दूसरे छोर पर नहीं पहुँच सकते। पांच योजन का विस्तार वाला होने पर भी यह सीमातीत अर्थात् अनंत विस्तार वाला है। यह दिव्य धाम एक देशीय होने पर भी सर्वव्यापक है। यह समस्त भगवद्धामों का सिरमौर है। सबका आधार है। यह स्वयं में अनादि है और सबका आदि है।

सखी! भले ही तू पलक झपकते ही भूलोक से इस दिव्यातिदिव्य वृंदावन में पहुँच गई है। शायद तू नहीं जानती कि तूने पलक झपकते कितनी दूरी तय कर ली। क्या तू जानती है? अच्छा तो फिर सुन–

एक ब्रह्माण्ड की लम्बाई एक छोर से दूसरे छोर तक 50 करोड़ योजन(600 करोड़ कि. मी. अर्थात् 6 अरब कि. मी.) है। जिसका घेरा 200 करोड़ योजन (2400 करोड़ कि. मी. अर्थात् 24 अरब कि. मी.) है। ब्रह्माण्ड के ठीक बीच (केन्द्र) में सूर्य देव स्थित हैं। जो सौरमण्डल का भी केन्द्र बिन्दु है। इसी सौर मण्डालान्तर्गत पृथ्वी है जहाँ से तू आई है।

इस पृथ्वी से ब्रह्माण्ड के अन्तिम छोर की दूरी 26 करोड़ 50 लाख योजन (318 करोड़ कि. मी. अर्थात् 3 अरब 18 करोड़ कि. मी.) है।

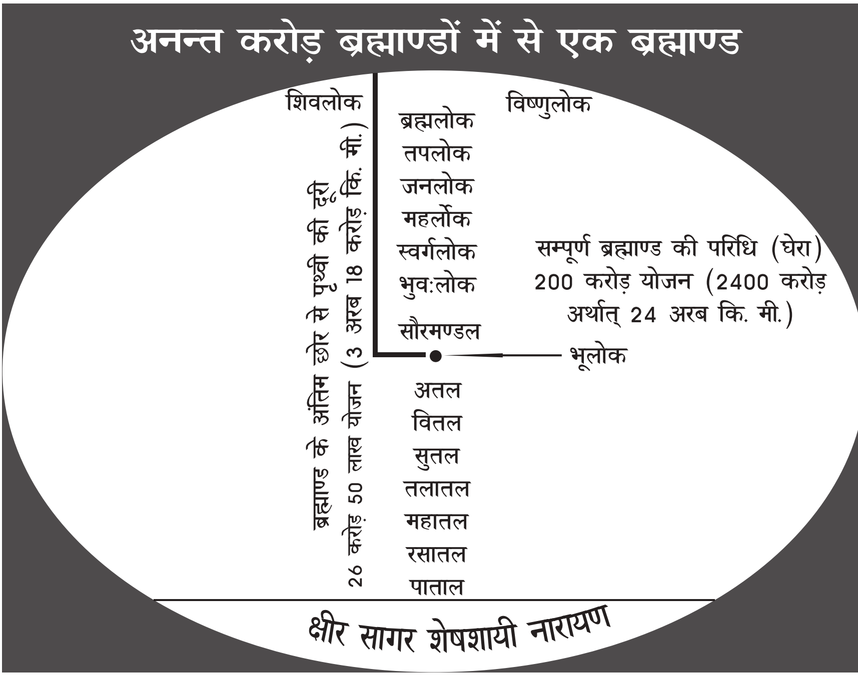

24 अरब कि. मी. विस्तार वाले एक ब्रह्माण्ड में चौदह लोक स्थित हैं। सौरमण्डल से नीचे अतल, वितुल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नाम के सात लोक स्थित हैं। इन सात लोकों में सबसे नीचे पाताल है। उससे भी 30 हजार योजन (360 हजार कि. मी. अर्थात् 3 लाख 60 हजार कि. मी.) नीचे जहाँ ब्रह्माण्ड का नीचे का छोर है वहीं पर गर्भोदक समुद्र (क्षीरसागर) है। जिसमें भगवान् नारायण शेषशय्या पर लेटे हुए हैं। यह गर्भोदक समुद्र ब्रह्माण्ड के भीतर सबसे नीचे स्थित है।

जैसे पृथ्वी से नीचे सात लोक हैं ऐसे ही पृथ्वी से ऊपर भी छह लोक स्थित हैं जिनके नाम भूव:लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक व ब्रह्मलोक हैं। ब्रह्मलोक को सत्यलोक भी कहते हैं। इस प्रकार पृथ्वी सहित चौदह लोकों वाले ब्रह्माण्ड के भीतर ही सबसे ऊपर शिवलोक व विष्णुलोक (वैकुण्ठ) है।

यह तो एक ब्रह्माण्ड का कुछ अंश में वर्णन हुआ है। इस प्रकार के अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, कोई भी गणना नहीं कर सकता। शायद कोई

पृथ्वी के धूल कणों की गणना कर ले लेकिन कोई ब्रह्माण्डों की गणना नहीं कर सकता। ऐसे विस्तार वाले करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड महाविष्णु के एक-एक रोम कूप में सवकाश घूमते रहते हैं।

सखी! जरा सोचो, जिनके एक-एक रोम कूप में करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड आ जाते हैं उन महाविराट, महाविष्णु का शरीर कितना विशाल होगा। इतने विशाल रूप की कल्पना भी नहीं हो सकती। यही विशालकाय महाविष्णु जिस कारण-जल (विरजा नदी) में लेटे हुए हैं, वह कारणजल वाला समुद्र इतना विशाल है कि उसमें लेटे हुए महाविष्णु ऐसे जान पड़ते हैं जैसे झरोखे से आने वाली सूर्य की किरणों में धूल के छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखलाई पड़ते हैं। उन परमाणुओं के भी

एक–एक के सौ–सौ टुकड़े करने पर जो सूक्ष्म–से–सूक्ष्म रूप रहता है, वह महाविष्णु कारणसमुद्र में ऐसे ही प्रतीत होते हैं।

जिन महाविष्णु के एक–एक रोम कूप में करोड़ों–करोड़ों ब्रह्माण्ड सवकाश घूमते रहते हैं, जब उनकी विशालता की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता फिर उस कारणसमुद्र की विशालता की तो कोई भला कैसे कल्पना कर सकता है जिसमें महाविष्णु भी एक धूल कण के सौवें हिस्से के बराबर भी दिखाई नहीं देते।

सखी! इतने विशाल कारणसमुद्र से भी दस गुना अधिक विस्तार वाला मुक्ति पद है जिसको निर्गुण, निराकार ब्रह्म भी कहा जाता है। वह श्रीकृष्ण की ही अंग कान्ति है, उनका तेज है। उस ब्रह्मरूप ज्योर्तिमय तेज से दस गुना अधिक विस्तार वाला भगवान् सदाशिव का महाकैलाश है। इन्हीं सदाशिव का एक–एक अंश शिव रूप से समस्त ब्रह्माण्डों में स्थित रहता है। महाकैलाश से दस गुना अधिक विस्तार के क्रम से चार लोक हैं जिनके नाम अनिरूद्ध लोक, प्रद्युम्न लोक, संकर्षण लोक तथा वासुदेव लोक हैं। ये सब लोक परव्योम में महावैकुण्ड के अर्न्तगत आते हैं। इन चारों लोकों के अधिपतियों को चर्तुव्यूह अवतार कहते हैं। इस महावैकुण्ठ परव्योम में श्रीकृष्ण के अंश रूप अनन्तानन्त अवतारों के अपने अलग– अलग लोक हैं। परव्योम में स्थित महावैकुण्ठ के अर्न्तगत वासुदेव लोक से ऊपर दस–दस गुना अधिक क्रम से तीन लोक हैं जिनके नाम द्वारिका, मथुरा तथा गोलोक हैं।

हे सखी! गोलोक से भी ऊपर करोड़ों – करोड़ों गुना विस्तार वाला यह प्रेम नगर श्रीवृंदावन धाम है जो प्रिया–प्रियतम का निज घर है। इतना अधिक विस्तार वाला होने पर भी यह अपने ऐश्वर्य को छिपाकर माधुर्य रूप से केवल पाँच योजन (60 कि. मी.) वाला ही दिखाई पड़ता है।

सखी! अब तो तू कुछ–कुछ समझ ही गई होगी कि भूलोक से यह प्रेम नगर वृंदावन कितनी दूरी पर स्थित है। इतनी लम्बी दूरी तुमने पलक झपकते ही तय कर ली।

सखी! एक बात ओर सुनो। यह जो वृंदावन है, यही भौम वृंदावन

है। यह पृथ्वी पर अभेद रूप से स्थित रहकर रसिक भक्तों पर कृपा दृष्टि कर रहा है। यह तो प्रभु की योगमाया का चमत्कार है जो भूलोक में सबको दिखाई देता है। यह वृंदावन अपने अनन्तानन्त ऐश्वर्य को छिपाकर माधुर्य रूप से भूलोक पर स्थित है। यह साधारण पृथ्वी के सदृश्य ही दिखाई देता है। किसी भाग्यशाली कृपा प्राप्त जीव को ही इसका साक्षात्कार होता है।

हे सखी! यह वृंदावन अविचल, मन बुद्धि की पहुँच से परे, अलौकिक व अद्भुत है। यह त्रिगुणातीत, अविनाशी, अतिसुन्दर, निर्मल, अनादि, अनन्त, असीम व अगम्य है। इसका वर्णन करते वाणी भी विथकित हो जाती है। अनन्तानन्त वैकुण्ठ इसके एक अंश के भी अंश स्वरूप हैं।

यह नित्य वृंदावन करोड़ों-करोड़ों भगवद् धामों से विलक्षण है। इस धाम की कोई समता नहीं कर सकता। यह धाम अद्भुत, चिद्घन, व्यापक तथा सब लोकों से ऊपर, सर्वलोक सिरमौर है। इसकी शक्ति अचिंत्य है। मन, बुद्धि व इन्द्रियों से अगोचर है। मायातीत, ज्ञानातीत, कालातीत यह वृंदावन दुर्लभातिदुर्लभ है।

इस गुणातीत, कालातीत, सर्वसुन्दर तथा प्रेमानन्द स्वरूप रसधाम वृन्दावन में पराभक्ति बिना कोई पहुँच नहीं सकता। पराभक्ति एकमात्र कृपा से ही सम्भव है। यह कृपा शरणागत दीन भक्तों पर ही होती है।

ज्ञान द्वारा मुक्ति सुलभ है, धर्म अर्थ और काम यज्ञादि अनुष्ठान करने से मिल सकते हैं परंतु हजारों प्रकार के साधन करने से भी पराभक्ति (परम प्रेम) अत्यंत दुर्लभ है। प्रेम बिना नित्य वृंदावन में प्रवेश नहीं हो सकता। यह प्रेम अत्यंत दुर्लभ होने पर भी शरणागत दीन भक्त को बिना किसी प्रयास के ऐसे प्राप्त हो जाता है जैसे माता-पिता की सम्पत्ति पुत्र को सहज ही प्राप्त हो जाती है। सखी! तू बहुत भाग्यशाली है। तुम पर कृपा हुई है। इसलिए तू यहाँ पहुँच गई है।

आओ सखी! बहुत देर हो गई, अब मैं तुमको इस प्रेम नगर वृंदावन की समस्त कुंज स्थलियों, सरोवरों, यमुना घाटों, वनों-उपवनों व प्रिया-प्रियतम की क्रीड़ा स्थलियों के दर्शन कराऊँ।

हे मेरी प्यारी सखी! आओ, अब मैं तुम्हें इस प्रेम नगर निकुंज वृंदावन की एक-एक बिहार स्थली दिखाऊँ जिनमें प्रिया-प्रियतम स्वच्छन्द रूप से नित्य बिहार करते हैं। देखो सखी! जैसा कि वृंदावन नाम से ही ज्ञात होता है, इस वन में वन अधिक हैं। यहाँ पर जामुन, खदिर, प्लक्ष, बांस, पीपल, नाग, वट (बरगद), पलाश, अक्ष, अरिष्ट, मौलश्री, अर्जुन, बकुल, विष्टी, सर्ज, यमकर, वृष, पनस, अर्क, शमी, कदम्ब, आम, नीम, मधु, वृष, ओदुम्बर, बहेड़ा, पाहिक, बंजुल, धातृ, हेमदुग्ध, बिल्व, शम्बर, आंवला, कारसकर, नारीकेल, अगरू, वेत्र, कुचिला, खैर, शीशम, रीठा, चीड़, साल, कटहल, महुआ, कदली, अमरूद, लीची आदि-आदि न जाने कितने प्रकार के फलों व फूलों से लदे वृक्ष हैं।

इस दिव्यातिदिव्य चिन्मय वृंदावन के ठीक बीच में यह मोहन महल है। यह प्रिया-प्रियतम की अनेकों निभृत निकुञ्जों में से मुख्य निभृत निकुञ्ज है। इसके चारों ओर आधा कोस (डेढ़ किलोमीटर) की दूरी तक अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे व चित्र-विचित्र प्रकार के पुष्पों की फुलवारी है जो चारों ओर से एक अष्ट कोणाकार स्फटिक की द्वीमंजिल ईमारत से घिरी हुई है। इसके आठ दिशाओं में आठ विशाल द्वार हैं। इसलिये इस किले के आकार की ईमारत को अष्टद्वारी महल भी कहते हैं।

इस फुलवारी के ठीक केन्द्र में मोहल महल के चारों ओर आठों दिशाओं में आठ मोहिनी कुञ्जें हैं। जिनमें सखी-सहचरियाँ श्रीप्रिया-प्रियतम की अष्टयाम सेवा करती हैं। पहली मोहिनी कुञ्ज का नाम **मंगल कुञ्ज** है। दूसरी **स्नान कुञ्ज**, तीसरी **शृंगार कुञ्ज**, चौथी **राजभोग कुञ्ज**, पांचवीं **संध्या कुञ्ज**, छठी **ब्यारू कुञ्ज**, सातवीं **शयन कुञ्ज** व आठवीं **ब्याहुला कुञ्ज** है।

हे सखी! इस फुलवारी की बाहरी सीमा पर चारों ओर जो अष्ट भुजाकार अष्टद्वारी महल है, उसकी प्रत्येक भुजा एक विशाल लम्बी कुञ्ज से निर्मित है। आठ मणिमय स्फटिक कुञ्जों को मिलाकर यह अष्टद्वारी महल बना है। इन आठ कुञ्जों के नाम **रंगद, रसद, रहसि,**

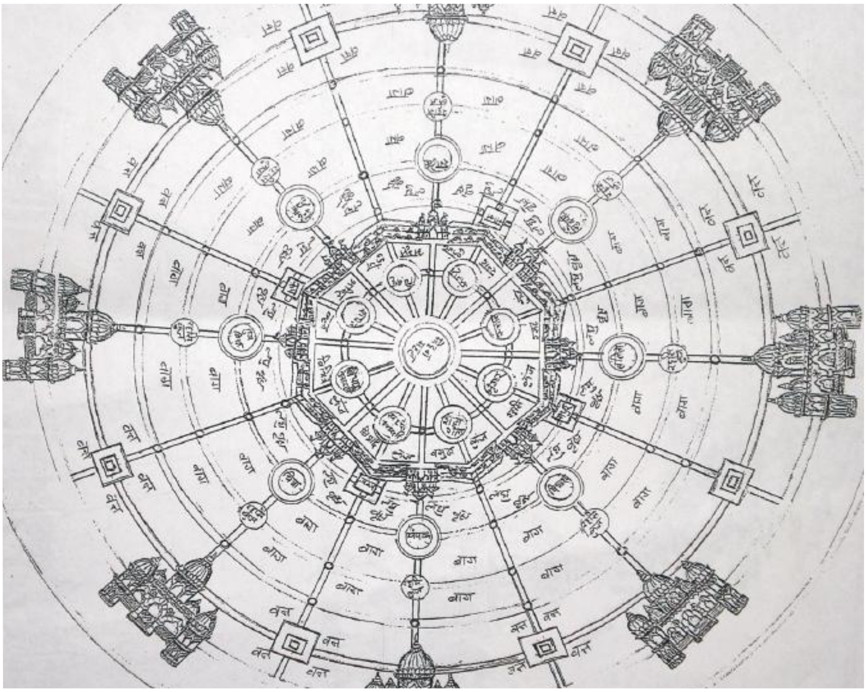

वसुदा, विशद, विचित्र, अमित कला व अमृत कुञ्ज है। अष्टद्वारी महल के बाहर चारों ओर आधा कोस तक अति सुन्दर उद्यान (बगीचा) है जिसमें लघु श्रेणी के वृक्ष हैं उसके ठीक बीच में चारों ओर चार सरोवर हैं। उत्तर दिशा और ईशान कोण के बीच में पहला सरोवर है जिसका नाम **मानसरोवर** है। दूसरा **मधुर सरोवर** पूर्व दिशा व अग्नि कोण के बीच, तीसरा **स्वरूप सरोवर** दक्षिण दिशा व नैऋत कोण के बीच व चौथा **रूप सरोवर** पश्चिम दिशा व वायु कोण के बीच स्थित है।

इस उद्यान (बाग) की बाहरी सीमा पर चारों ओर आठों दिशाओं में श्री रंगदेवी आदि अष्ट सखियों की अष्ट कुञ्जे हैं। उत्तर में श्री रंगदेवी जी की श्याम वर्णा **सुखदा** नामक कुञ्ज, ईशान कोण में श्री सुदेवी जी की हरित वर्णा **वसंत सुखदा** नामक कुञ्ज, पूर्व दिशा में श्री ललिता जी की दामिनी वर्णा **अनंग सुखदा** कुञ्ज, अग्नि कोण में श्री विशाखा जी की मेघ वर्णा **आनंद** नामक कुञ्ज, दक्षिण कोण में श्री चम्पकलता जी

की तप्त स्वर्ण वर्णा **कामलता** कुञ्ज, नैऋत्त कोण में श्री चित्रा जी की चित्र वर्णा **पद्म किञ्जलक** नामक कुञ्ज, पश्चिम दिशा में श्री तुंगविद्या जी की अरूण वर्णा **आनन्ददा** नामक कुञ्ज, वायु कोण में श्री इन्दुलेखा जी की स्वर्ण वर्णा **पूर्णेन्दु** नामक कुञ्ज है।

हे सखी! उद्यान (बगीचा) के चारों ओर आधा कोस तक अति सुन्दर उपवन (बाग) हैं। उपवन के बीच में चारों ओर आठों दिशाओं में आठ रहसि कुञ्जे हैं। जिनमें श्री प्रिया-प्रियतम अनेक प्रकार की रस क्रीड़ाएँ करके रस वर्षण करते हैं। जिस रस से हम सखियों के प्राणों में रस आनन्द का संचार होता है।

हे सखी! इस उपवन (बाग) के चारों ओर आधा कोस तक बड़े-बड़े वृक्षों का बहुत विशाल मनोहारी वन है। वन के बीच-बीच में चारों ओर आठों दिशाओं में आठ सुन्दर हृदनियाँ (छोटे सरोवर) भिन्न-भिन्न आकार व प्रकार की हैं। उपवन (बाग) व वन की संधि सीमा पर भी अनेक प्रकार के उत्सव विहार स्थल हैं जिसमें श्री प्रिया-प्रियतम हम सब सखियों के साथ अनेक प्रकार के उत्सव मनाते हैं। वन की बाहरी सीमा पर श्री जमुना जी श्री धाम वृन्दावन की परिक्रमा करते हुए प्रवाहित होती हैं। श्री जमुना जी के दोनों तटों पर अनेक प्रकार की मणियों से खचित आठों दिशाओं में आठ अति सुन्दर घाट हैं। इस प्रकार हे सखी! यह प्रेम नगर वृन्दावन एक देशीय व पाँच योजन (साठ किलोमीटर) विस्तार वाला होकर भी सर्वव्यापक व सीमातीत है। यह अपनी महिमा में निराधार स्थित रहकर समस्त लोकों का आधार बना हुआ है।

सखी! ये देखो, सामने विशाल कल्पवृक्ष की छाया में नाना प्रकार की मणियों से खचित जो स्वर्णिम विशाल निकुञ्ज है यह **मोहन महल** है। यह मोहन महल श्री प्रिया-प्रियतम का केलि स्थल है। यह मोहन मंदिर वृन्दावन के केन्द्र में स्थित है। यह सूर्यकांत, चन्द्रकांत, हेमकांत, पद्मराग, वैदुर्य, नील, स्फटिक, कौस्तुभ आदि अनेक प्रकार की बहुरंगी मणियों से निर्मित है। यह विशाल कुञ्ज वृन्दावन की समस्त कुञ्जों में शिरोमणि है।

देखो सखी! इसके चारों ओर अति मनोहर जगमोहन (बरामदा) व इसके अनेक प्रकार के मणियों से सुसज्जित स्तम्भ कितने फब रहे हैं। इसके सुन्दर स्तम्भ ऐसे लग रहे हैं मानो कामदेव ही इतने रूप धारण कर प्रिया-प्रियतम के दर्शन से जड़ता को प्राप्त हो गया है। महल के चारों दिशाओं में तीन-तीन द्वार हैं। इस बारहद्वारी महल के शिखर पर अति सुन्दर गुम्बज देखो, ये मन को बरबस आकर्षित कर रहे हैं। इस निकुञ्ज महल के भीतर ठीक बीच में इस सुन्दर सर्वतोभद्रनी शैय्या को तो देखो जो अपने दर्शन से श्रीप्रियाप्रियतम के हृदयों में प्रेम का उद्दीपन कर रस का संचार कर देती है।

देखो सखी! इसके चारों ओर के बारह द्वारों के दोनों तरफ सुन्दर जालीदार झरोखों में लिपटी विविध प्रकार व विविध रंगों के पुष्पों से आच्छादित कल्पलताएँ कितनी फब रही हैं। सखी! इन झरोखों के रन्ध्रों (छिद्रों) को देखो, ये रन्ध्र नहीं मानो हम सब सखियों के नेत्र हैं। इन्हीं रन्ध्रों से तो हम सखियाँ अपने श्री प्रिया-प्रियतम की लीला रस माधुरी का पान करके आनन्द विभोर होती हैं। यही लीलारस हमारे लिये संजीवनी

बूटी के समान है जिसको नेत्रों से पीकर हम जीवन धारण करती हैं। यह लीला रस हमारे प्राणों का पोषक है।

देखो सखी! ये उत्तर दिशा के तीन द्वारों में जो मध्य द्वार है, इसी से प्रात: अरूणोदय के समय श्री हितू सहचरी व हरिप्रिया जी आदि सहचरियाँ भीतर प्रवेश करके प्रिया-लाल को सुखप्रद रीति से जगाती हैं। तब हम सखियाँ द्वार के सन्मुख नृत्य-गान व वादन करते हुए श्रीयुगल किशोर को सचेत कर जागरण में सहयोग करती हैं। सखी! उस समय वन के हंस, सारस, मयूर, कोकिल, शुक, मैना, चातक, चकोर व कपोत आदि पक्षी भी अपने सुन्दर कलरव से गान करते हैं। उस समय सभी पक्षी वृन्दा सखी के इशारे से मोहन महल के चारों ओर किलोल करते हुए श्री प्रिया-प्रियतम को आनन्दित करते हैं और दर्शनों की उत्कण्ठा लिए श्रीयुगल किशोर के निकुञ्ज से बाहर आने का मार्ग जोहते हुए बड़े ही अच्छे लगते हैं। उस समय बीच-बीच में पक्षी भी हम सखियों के सुर में अपना सुर मिलाकर गान करने लगते हैं।

सखी! जिस मणिमय गोल मण्डल (चबूतरा) पर यह मोहन महल है, इस मणि मण्डल का नाम **रसपुञ्ज** मण्डल है। इसके बीच में यह मोहन महल है। सखी! वैसे तो इस वन में सभी कल्पवृक्ष ही हैं लेकिन यह विशाल वृक्ष जो तुम देख रही हो, इसकी बात ही निराली है। इस वृक्ष पर हर समय बसंत ऋतु छायी रहती है। इस वृक्षराज कल्पतरु पर वास करते हुए बसंत ऋतु पूरे वृन्दावन के वृक्षों पर राज्य करती है। यह सुन्दर वृक्ष पूरे मोहन महल पर छाया किए रहता है। यह श्री प्रिया-प्रियतम को बहुत ही आनन्द प्रदान करने वाला है।

सखी! इसी वृक्ष के मूल से एक वृहद् शाखा जो हमारी तरफ आ रही है, इसकी छाया में यह जो सुन्दर गोलाकार मणिमण्डल (चबूतरा) है, इस मणिमण्डल को **मोहनमण्डल** कहते हैं। इसके ऊपर अष्टकोण का अष्टदल कमलाकृत अरुण वर्ण का सुन्दर सिंहासन है। इस पर श्री प्रिया-प्रियतम प्रतिदिन मोहन महल में दोपहर विश्राम के लिये जाने से पूर्व विराजते हैं। उस समय श्री रंगदेवी आदि अष्ट प्रधान सखियाँ अपनी-अपनी सखी परिकर के साथ अष्टकोण सिंहासन के चारों ओर

आठों दिशाओं में श्री प्रिया–प्रियतम की रुचि अनुसार सेवा के लिये हृदयों में अनुराग भरकर सेवा सामग्री लिये उपस्थित रहती हैं।

सखी! निकुञ्जोपासक रसिकजन इस स्थल को **मंत्रपीठ** भी कहते हैं क्योंकि गुरु प्रदत्त निकुञ्ज मंत्र (दीक्षा) का जप करते हुए साधक इसी पीठ पर आसीन सखी परिकर से परिवेष्ठित प्रिया प्रियतम श्री राधासर्वेश्वर का चिन्तन करते हैं। हे सखी! इस वृन्दावन की समस्त क्रीड़ा स्थलियों में रसराज श्रीकृष्ण महाभावरूपा श्री राधा रानी के प्रेम रंग में रंगे हुए अपने ऐश्वर्य को तिरोहित करके प्रेममग्न रहते हैं। उन्हें अपने ऐश्वर्य का तनिक भी भान नहीं रहता। लेकिन जब प्यारे श्यामसुन्दर इस सिंहासन (मंत्रपीठ) पर विराजमान होते हैं तो उसी समय उनमें ऐश्वर्य का प्राकट्य होने लगता है। उस समय सर्वेश्वर प्रभु की स्वरूपभूता समस्त ऐश्वर्य शक्तियाँ प्रभु के श्री अंगों में स्थित रहकर सेवा के लिये क्रियान्वित होने लगती हैं। इस मंत्रपीठ पर युगल श्रीराधा–सर्वेश्वर के रूप में विराजमान होकर अपने समस्त भक्तों का पोषण करते हैं।

सखी! वैसे तो श्रीराधामाधव के इस प्रेम धाम वृन्दावन में सच्चिदानन्दमयी अनेकों सखियाँ हैं। लेकिन इनमें श्रीरंगदेवी आदि अष्ट मुख्य सखियाँ हैं। इन आठों की भी आठ–आठ सखियाँ हैं। फिर आगे इन चौंसठ की भी आठ–आठ सखियाँ हैं। इस प्रकार अष्ट मुख्य सखियों के प्रत्येक यूथ में बहत्तर–बहत्तर सखियाँ हैं। आठों यूथेश्वरियों को मिलाकर कुल पाँच सौ चौरासी सखियाँ हैं। इन सखियों के अतिरिक्त और भी बहुत सी सखियाँ हैं जिनकी गणना करना असम्भव है, जो श्रीप्रिया–प्रियतम की सेवा में नित्य नियुक्त रहकर सेवा सुख का निरन्तर रस पान करती रहती हैं। सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी तथा मञ्जरी ये पाँच प्रकार की सखियाँ हैं। ये सब निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा रानी की कायव्यूहरूपा हैं। यहाँ पर किसी के भी शरीर न तो पञ्चतत्त्वात्मक अस्थि, माँस, रक्तमय जड़ शरीर हैं और न ही सूक्ष्म व कारण शरीर हैं। यहाँ किसी के भी देह में माया जनित कोई विकार नहीं होता। यहाँ सभी सखियों के सच्चिदानन्दमय भाव देह ही होते हैं। देह में किञ्चित् भी स्थूलता नहीं होती। इस पर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये

यहाँ सदा सबकी किशोर अवस्था ही रहती है।

हे मेरी प्यारी सखी! श्यामा-श्याम के इस प्रेमनगर निकुञ्ज धाम में नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा तथा निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण व अष्ट मुख्य सखियों के नाम, वर्ण, वस्त्र, आयु, सेवा, दिशा की स्थिति इस प्रकार से है-

दिशा	नाम	देह का वर्ण	वस्त्र वर्ण	(वर्ष, मास, दिन) आयु	सेवा
मध्य	श्रीराधा	तप्तकाञ्चन	नीला	14-2-15	*
मध्य	श्रीकृष्ण	नीला	पीला	15-9-7	*
उत्तर	श्रीरंगदेवी	कमल केसर	अरुण	14-2-8	आभूषण
ईशान	श्रीसुदेवी	कमल केसर	लाल	14-2-8	सुगंध
पूर्व	श्रीललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	14-3-12	ताम्बूल
अग्नि	श्रीविशाखा	दामिनी	तारावली	14-2-15	वस्त्र
दक्षिण	श्रीचम्पकलता	चम्पक	नील	14-2-14	भोजन
नैऋत	श्रीचित्रा	काश्मीर केसर	पीत	14-1-19	जल
पश्चिम	श्रीतुंगविद्या	तप्तकाञ्चन	पांडुर	14-2-20	वाद्य
वायव्य	श्रीइंदुलेखा	हरताल	अनार पुष्प	14-2-12	नृत्य, कोक

सखी! भले ही चाहे सखियों की अंग-कान्ति व आयु भिन्न-भिन्न हो, फिर भी सभी सखियाँ एक ही रूप के सागर में झकोर के निकाली हुई सी लगती हैं। देखने में सभी सखियाँ एक ही आयु की जान पड़ती हैं। यहाँ पर सखियों में परस्पर कभी छोटे या बड़े का भाव नहीं रहता। किसी भी सखी के अद्भुत रूप की शोभा देखकर कामदेव-रति की छवि बिल्कुल ही फीकी लगने लगती है। हम सब सखियाँ अमित कला कौशल से श्रीप्रिया-प्रियतम को सुख प्रदान करने हेतु इनकी सेवा में लगी रहती हैं। श्रीप्रिया-लाल की इच्छा ही हमारी इच्छा होती है। हम सब सखियाँ इनकी इच्छा विग्रहरूपा ही हैं। हम सब सखियाँ श्रीप्रिया जी की कायव्यूहरुपा होने से इनके ही समान रूप वाली हैं। हम सबके रूप इस प्रकार एक समान हैं जैसे एक डाल के तोड़े हुए फल एक समान ही होते हैं। हम सबकी एकमात्र श्रीप्रिया-प्रियतम की जोड़ी ही जीवन स्वरूप है। इनका नित्य विहार ही हम सखियों का आहार है। यह जोड़ी ही हमारे प्राणों के लिये संजीवनी बूटी है।

प्यारी जू की अंग सरूपा। इनहीं सी सब रूप अनूपा।।
इन समान सखि केवल ये ही। जिनके युगल रसिक सुसनेही।।
रूप वयस गुण में सम सारी। स्यामा सों नहिं तनिकहुँ न्यारी।।
चकडोरी सी फिरहिं टहल में। रुनकिझुनकि रव करति महल में।।
दम्पति सँग छाया सी डोलैं। मनु मुख फूल झरत जब बोलैं।।
भावइ मन पिय प्यारिहि जोई। हरषित करहिं सवायो सोई।।
तन ते न्यारी मन ते एका। हिये युगल सुख एकहि टेका।।
युगल प्रिया सब सखी सहेली। रहति सदा रस भरि अलबेली।।

सखी! देखो, इस मोहन महल के रस पुञ्ज मणि मण्डल को। इसके चारों ओर ये छोटी-सी (आठ फुट की चौड़ाई) नहर कितनी सुहावनी लग रही है। इसका नीलमणि सदृश जल व इसमें श्वेत, नील, पीत व अरुण कमल इसकी शोभा को चार चाँद लगा रहे हैं। सखी इस प्रेम नगर में जितने भी मार्ग हैं सभी के दोनों तरफ नहरे हैं। समस्त मार्ग अनेक प्रकार की मणियों से जड़ित हैं। प्राय: सभी मार्गों के दोनों तरफ विविध प्रकार व विविध रंगों के पुष्णों के मणि जड़ित स्वर्ण गमले शोभा पाते हैं। मोहन महल के चारों ओर आठों दिशाओं में मोहन महल से यमुना जी तक जाने के लिये आठ मुख्य मार्ग हैं। आओ सखी! मैं तुमको उत्तर दिशा के इस मार्ग से ले चलती हूँ। यह मार्ग श्रीरंगदेवी जी की **सुखदा** नामक कुञ्ज से होता हुआ श्री यमुना जी के रंगद घाट पर पहुँचता है।

मंगल कुञ्ज

देखो सखी! अपने दायीं तरफ फुलवारी को, इसमें अनेक प्रकार व अनेक रंगों के पुष्प खिले हैं। यद्यपि इसमें अनेक रंगों के पुष्प हैं फिर भी पीले रंग के फूलों की अधिकता है। इस विशाल फूलवारी के बीच में केवल पीले रंग के फूलों की विशाल क्यारी है। उस क्यारी के बीच में स्वर्णमयी पीत मणियों से जड़ित मंगल कुञ्ज है। इसलिये इसको बसंती कुञ्ज भी कहते हैं।

देखो, सखी! चलते-चलते ये चौराहा आ गया। इसके बीच में

देखो मणिमय फव्वारा। इस मुख्य फव्वारे के चारों ओर अनेक वर्ण के इत्र के फव्वारे कैसे सुहावने लग रहे हैं। फव्वारों के बीच-बीच में अनेकों रंगों की मणियों का प्रकाश जगमगा रहा है। इस चौराहे के चारों ओर घूमता हुआ प्रकाशमान जल ऐसा जान पड़ता है जैसे प्रकाश ही तरल बनकर बह रहा हो।

सखी! ये मार्ग आगे सीधा अष्टद्वारी महल के उत्तरी द्वार से होकर श्रीरंगदेवी जी की **सुखदा** नामक कुञ्ज से होता हुआ यमुना जी के रंगद घाट जा रहा है। हमारी बायीं तरफ यह पश्चिम दिशा वाला मार्ग ब्याहुला कुञ्ज की तरफ जा रहा है और हमारी दायीं तरफ पूर्व दिशा वाला मार्ग मंगल कुञ्ज जा रहा है। अब हम इसी मार्ग से चलती हैं। यह मार्ग मोहन महल के एक चौथाई कोस (पौना कि. मी.) की दूरी से मोहन महल के चारों तरफ आठों मोहनी कुञ्जों (मंगल, स्नान, शृंगार, राजभोग, संध्या, ब्यारू, शयन, ब्याहुला कुञ्ज) को परस्पर जोड़ता है।

देखो सखी! हमारे दोनों तरफ यह विशाल फुलवारी (पुष्प वाटिका) को। इसके बीच-बीच में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उपमार्ग व पगडंडियाँ हैं। इन उपमार्गों के दोनों ओर चम्पा, टगर, चांदनी, हरशृंगार, कनेर आदि की पंक्तियाँ व उन पर छायीं कल्पलताएँ कितनी प्यारी लग रही हैं। ओर सखी! इन छोटे-छोटे वृक्षों पर बैठे तोता, मैना, कोकिल, चकोर आदि सुन्दर पक्षियों को तो देखो।

देखो सखी! इस तरफ पगडंडी पर मयूर नृत्य की मुद्रा में पंख फैलाए कितना सुन्दर लग रहा है। सखी सामने देखो! मंगल कुञ्ज की तरफ से नहर के रास्ते चलता हुआ यह हंस-हंसनी का जोड़ा आ रहा है। देखो सखी! अपनी बायीं तरफ। कृष्णसार हरिण मुख में तृण दबाए वाटिका से निकलकर धीरे-धीरे हमारी तरफ ही आ रहा है। देखो-देखो खरगोश शावक अभी अचानक फुलवारी से कूदता-फांदता हुआ तुम्हारे चरणों में लौटने लगा है। जानती हो सखी यह ऐसा क्यों कर रहा है। यह तुम्हारी गोद में आने के लिये अनुनय-विनय कर रहा है क्योंकि इसको तुममें श्रीप्रिया जी के दर्शन हो रहे हैं। इसको एक बार अपने हाथ से स्पर्श कर दो।

देखो सखी! दोनों तरफ की नहरों के दोनों तटों पर मणि जटित स्वर्ण गमलों में लवंग लता, शरद लता, मुक्ता लता तथा बीच–बीच में मोगरा, चमेली, मोतिया, बेला के पौधे पुष्पों से लदे कितने प्यारे लग रहे हैं।

देखो सखी! चलते–चलते मंगल कुञ्ज की सीमा आ गयी। मंगल कुञ्ज के चारों ओर पीत वर्ण के पुष्पों की चार विशाल फुलवरियाँ हैं। ये चारों विशाल क्यारियाँ चारों ओर मणि जड़ित गोल मार्ग से घिरी हैं। मार्ग के दोनों ओर नहरें व दोनों नहरों के दोनों तरफ लघु श्रेणी के फूलों के वृक्ष व उन पर कलरव करते हुए पक्षियों को देखो। नहरों के दोनों ओर दोनों तटों पर मेहंदी आदि पौधों की बाड़ (दीवार) व उसमें लगे छोटे–छोटे पुष्पों पर मंडराते व गुनगुनाते हुए भ्रमर कितने अच्छे लग रहे हैं। इन चारों फुलवारियों के ठीक बीच में मंगल कुञ्ज है। मंगल कुञ्ज में आने के लिये चारों ओर से चार मार्ग हैं। हम जिस रास्ते से चल रहे हैं, यह पश्चिम का मार्ग है। दक्षिण का मार्ग मोहन महल से आ रहा है। पूर्व दिशा वाला मार्ग स्नान कुञ्ज तथा उत्तर दिशा वाला मार्ग रंगद कुञ्ज के ठीक बीच से आ रहा है। इस कुञ्ज में जिधर देखो उधर सब कुछ पीला–ही–पीला दृष्टिगोचर होता है।

सखी! अब चार सीढ़ी चढ़कर नहर की छोटी सी पुलिया पारकर

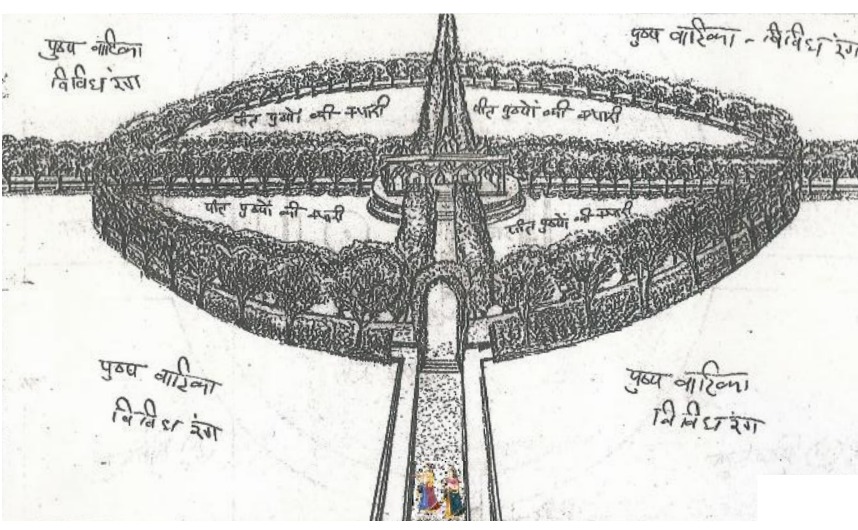

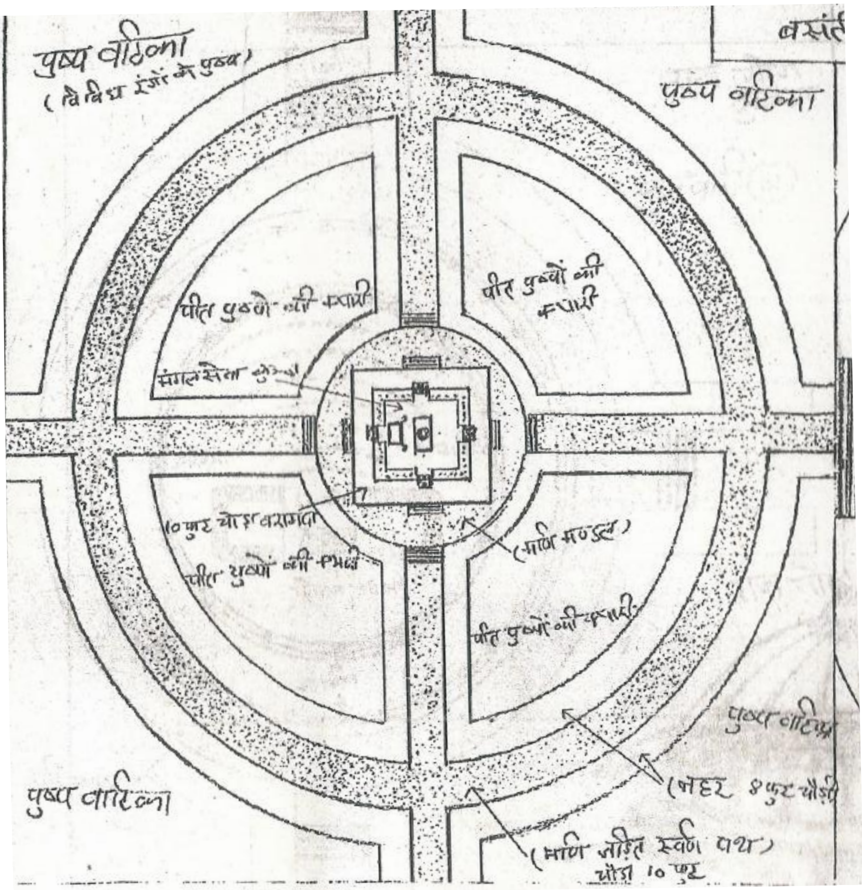

मेरे पीछे–पीछे आओ। देखो, यहाँ चारों ओर जिधर देखो पीला–ही–पीला दिखाई दे रहा है। तभी तो इसको बसंती कुञ्ज कहा जाता है। देखो सामने, सुन्दर पीत मणियों से जड़ित स्वर्णमय मणि मण्डल (गोल चबूतरा) के ऊपर ये पीत वर्ण की झलमलाती मंगल कुञ्ज है। यह कुञ्ज मोहन महल के उत्तर और ईशान कोण के बीच एक चौथाई कोस (पौना कि. मी.) की दूरी पर स्थित है। इसके चारों ओर जगमोहन (बरामदा) है जिसमें पीत मणियों के स्तम्भ व इसकी मणियों में प्रतिबिम्बित होती यह फुलवारी कैसी फब रही है। मणिमण्डल के ऊपर चारों ओर मणि जड़ित स्वर्ण गमलों में पीत पुष्पों के पौधे व लताएँ कैसी शोभा बिखेर रहे हैं। इसके पीत गुम्बज व इनके शिखर पर पीत रंग की पताकाएँ फहरा रही

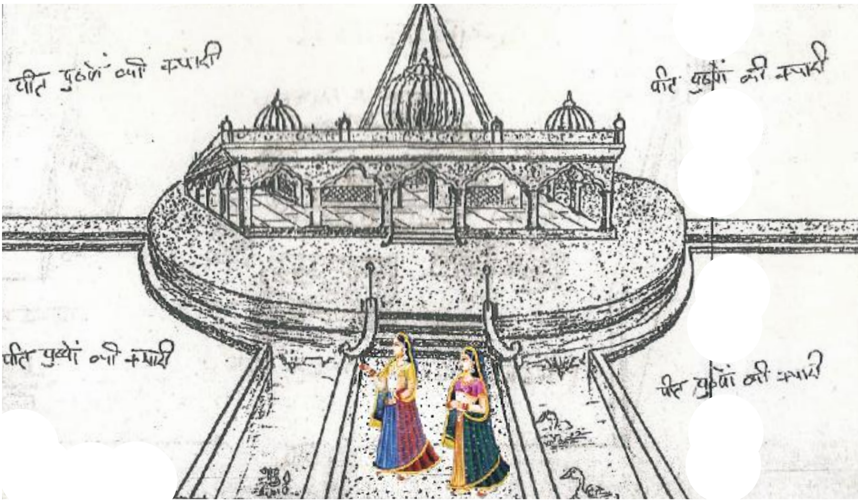

पीत मणिन सों चम चम चमकति, मंगल कुंज अतिहिं सुखदाई ।
पीत कुसुम लरि लटकति सुन्दर, बिच बिच मणि द्युति लेत लुभाई ।।

हैं।

आओ सखी! अब हम मंगल कुञ्ज के भीतर प्रवेश करते हैं। इस कुञ्ज के चारों ओर चार द्वार व इनमें लगे मणि जड़ित स्वर्ण कपाट तथा चारों द्वारों पर स्वर्ण तारों व रेशमी धागों से निर्मित चिक को देखो। सखी इधर भी देखो! यह कुञ्ज के बीच में जरीदार पीत वर्ण के वस्त्र से आवृत चौंकी है। प्रात: यहीं पर श्रीप्रिया-प्रियतम बैठकर मंगल भोग आरोगते हैं। इस चौंकी पर दोनों रसिक दम्पत्ति परस्पर एक दूसरे की तरफ मुँह करके बैठते हैं। इसके बाद दोनों मुख शुद्धि करते हैं। फिर अपनी निर्निमेष चंचल दृष्टि से एक दूसरे के मुख कमल को निहारते हैं। मुख धो लेने के पश्चात् श्रीप्रिया-प्रियतम पीत वसन से अपना मुख पोंछते हैं। फिर हम सखियाँ दोनों के बीच मंगल भोग का कंचल थाल पधराती हैं। जिसमें मीठा दही, माखन, मिश्री, खुरचन, अनेक प्रकार की बर्फी, पीले लड्डू, केसर मिश्रित दूध, मलाई आदि होते हैं। फिर युगलवर परस्पर रसालाप करते तथा एक दूसरे के रूप का रसपान करते हुए मंगल भोग आरोगते हैं। उस समय हम सखियों को जो आनन्द प्राप्त होता है उसका वर्णन वाणी से कभी हो ही नहीं सकता।

भोग आरोग लेने पर सखियाँ स्वर्ण झारी में सुवासित जल लेकर

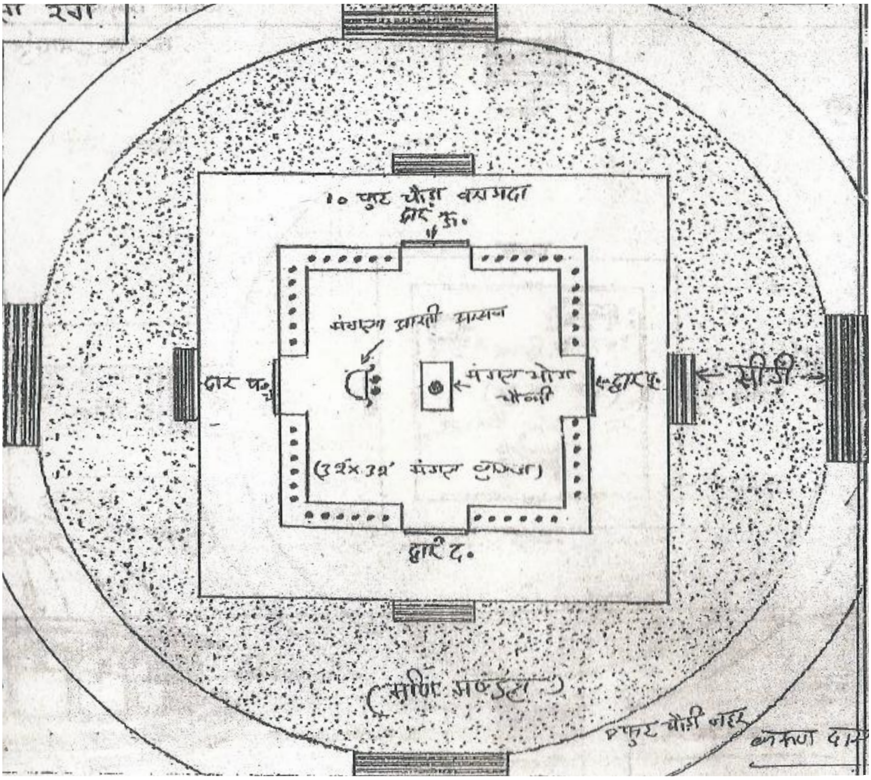

दोनों को आचमन कराती हैं। फिर युगल दम्पत्ति को बगल वाले इस रतनजड़ित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान करा श्रीरंगदेवी जी मुखवास दे बीरी (ताम्बूल) आरोगवाकर आरती उतारती हैं।

मंगल आरति गाऊँ भोर । मंगल दरसन युगलकिसोर ।।
पीत कुञ्ज अरु पीत सिँहासन, पीत वसन धरि बैठे आसन।
पीत चंद्रिका पगड़ी मोर, मंगल आरती गाऊँ भोर ।।
पिय प्यारी की प्यारी मुस्कन, अवलोकत चोरत सबकौ मन।
मंगल मूरति जन चित चोर, मंगल आरती गाऊँ भोर ।।
भाँति भाँति सों लाड़ लड़ाऊँ, अनुदिन निरखिनिरखि सुख पाऊँ।
दोउन पै डारूँ तृन तोर, मंगल आरती गाऊँ भोर ।।
रँगदेवी आरती उतारै, युगलप्रिया जै सब्द उचारै।
कुंदप्रिया लखि भाव विभोर, मंगल आरती गाऊँ भोर ।।

मंगल आरती उतारकर सखियाँ श्रीप्रिया–प्रियतम का जय गान करती हैं। बार–बार युगल के दर्शनकर आनन्द में मतवाली होकर जय–जयकार करती हैं।

परस्पर मुखारविन्द के दर्शन से श्रीयुगल किशोर कभी तृप्त नहीं होते। ये दोनों '**एक प्राण द्वै देही**' होने के कारण एक ही अनुराग रंग में रंगे रहते हैं। युगलवर को निरख–निरखकर हम सखियों के हृदयों में अपार आनन्द छा जाता है।

सखी! मोहन महल के चारों ओर आठ कुञ्जे हैं। ये आठों मोहिनी कुञ्ज के नाम से जानी जाती हैं। इनमें सखियाँ श्रीप्रिया–प्रियतम की अष्टयाम सेवा करती हैं। ये आठों कुञ्ज एक ही गोला मार्ग पर पड़ती हैं। इनमें प्रथम कुञ्ज मंगल कुञ्ज को तो तुमने देख ही लिया है। आओ, अब मैं तुम्हें दूसरी कुञ्ज **स्नान कुञ्ज** ले चलती हूँ।

सखी! ये गोला मार्ग मंगल कुञ्ज से स्नान कुञ्ज की ओर जा रहा है। दोनों तरफ पुष्प वाटिका में विविध प्रकार व विविध रंगों वाले विकसित पुष्पों की क्यारी तथा उनके चारों ओर लघु श्रेणी के वृक्षों पर आच्छादित लताओं पर बैठे पक्षियों की शोभा देखो। ये युगलवर के गुणगान में मस्त हो रहे हैं। देखो सखी! मार्ग के दोनों तरफ नहर में पीत, नील, श्वेत व रक्त वर्ण के विकसित कमल पुष्पों पर मकरन्द रस के लोभी भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। दोनों ओर रत्न जड़ित गमले व उनमें सुन्दर–सुन्दर पुष्प लताएँ व पुष्पों के पौधे कितने मनोहारी लग रहे हैं। देखो, ये सारस व हंसों का जोड़ा नहर के रास्ते धीरे–धीरे हमारी तरफ ही आ रहा है।

देखो सखी! सामने चौराहे पर सुवासित जल के भिन्न–भिन्न प्रकार के फव्वारे व स्फटिक मणियों से बने हंसों की चंचुओं से निकलते ये फव्वारे कितने प्यारे लग रहे हैं। समस्त फव्वारों के चारों ओर स्फटिक मणि की प्राचीर में प्रतिबिम्बित चम्पा के वृक्ष व फुलवारी को देखने से ऐसा भ्रम हो रहा है मानों फुलवारी के बीच फव्वारे छूट रहे हों। प्रतिक्षण रंग बदलते फव्वारों को देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों समस्त फुलवारी फव्वारों की फूटती धाराओं में प्रतिबिम्बित हो रही है।

देखो सखी! इस सुन्दर चौराहे से बायीं तरफ वाला मार्ग अष्टद्वारी महल के ईशान कोण वाले द्वार से होता हुआ श्री सुदेवी जी की **बसंत सुखदा** नामक कुञ्ज को जाता है। फिर आगे यह मार्ग वन से होता हुआ यमुना जी के घाट पहुँच जाता है और इस चौराहे से यह मार्ग दायीं तरफ मोहन महल को चला जाता है। अब हम इस चौराहे से सीधा आगे की तरफ चलते हैं क्योंकि हमें दूसरी कुञ्ज स्नान कुञ्ज जाना है।

स्नान कुञ्ज

देखो सखी! जिस प्रकार मंगला कुञ्ज चार पुष्प वाटिकाओं के बीच स्थित है वैसे ही अन्य सात कुञ्जें भी पुष्प वाटिका के मध्य चौराहे पर स्थित हैं। देखो, हमारे दोनों तरफ अनेक रंगों व अनेक प्रकार के पुष्पों की यह पुष्प वाटिका है। सखी देखो! वो सामने जो स्फटिक मणि की श्वेत चमचमाती विशाल कुञ्ज दिखाई दे रही है, वही स्नान कुञ्ज है। इस स्नान कुञ्ज के चारों ओर गोला मार्ग है जिसका घेरा लगभग एक चौथाई कोस (पौना कि. मी.) का है। यहाँ गोला मार्ग को पार करके चार मार्ग चारों दिशाओं से भीतर स्नान कुञ्ज में जाते हैं। सखी! मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि यहाँ जितने भी मार्ग हैं सभी के दोनों तरफ नहरें हैं और सभी मार्ग विविध प्रकार की मणियों से जड़ित हैं।

देखो सखी! अब हम रंग-बिरंगे पुष्पों की वाटिका की अन्तर सीमा पर पहुँच गई हैं। यहाँ से इस नहर का एक छोटा सा सेतु पार करके स्नान कुञ्ज की भीतरी पुष्पों की क्यारी प्रारम्भ हो जाती है। देखो, यहाँ पर जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक श्वेत-ही-श्वेत वर्ण के पुष्प दिखाई देंगे। अब यहाँ से आगे जो कुछ भी दिखाई देगा वह श्वेत वर्ण का ही होगा।

देखो, स्नान कुञ्ज व उसके श्वेत गुम्बजों पर फहराती पताकाएँ भी श्वेत वर्ण की हैं। देखो, अपने बायीं व दायीं तरफ नहर में स्फटिक मणि के हंसाकार बने फव्वारे व बीच- बीच में मणियों के श्वेत कमलाकार फव्वारे, इनमें कई तो जल के और बीच-बीच में इत्र व गुलाब जल के फव्वारे भी हैं। नहरों में पूर्ण खिले व अधखिले श्वेत, पीत,

रक्त व नील वर्ण के कमलों की पंखुड़ियों व हरित कमल दलों पर पड़ी जल की बूँदें कितनी प्यारी लग रही हैं। ऐसा लगता है मानो स्नान कुञ्ज अपने श्रीप्रिया- प्रियतम के स्वागत के लिये अपने कर-कमलों में मोती के थाल भरकर आने की प्रतिक्षा कर रही हो। सखी! स्नान कुञ्ज की तरफ से आती दोनों ओर की नहरें ऐसी लगती हैं मानो स्नान कुञ्ज अपने जीवनधन युगलकिशोर को अपने हृदय से लगाने के लिये दोनों बाहें फैलाये खड़ी हो। मार्ग के दोनों ओर खिली हुई पुष्पों की क्यारियों को देखकर ऐसा लगता है मानो स्नान कुञ्ज ने रसिक दम्पत्ति के स्वागत के लिये बड़े-बड़े थाल फूलों से भर सजाकर रखे हों। स्नान कुञ्ज के शिखर पर लगी पताकाओं की फहरान ऐसी लग रही है मानो स्नान कुञ्ज आकाश की तरफ हाथ उठाकर इशारे से अपने श्रीप्रिया-प्रियतम को बुला रही हो। और सखी! स्नान कुञ्ज की प्राचीर में लगी मणियाँ ऐसी लगती हैं मानो स्नान कुञ्ज सहस्त्रों नेत्रों से श्रीयुगलवर की बाट जोह रही हो।

देखो सखी! अब हम स्नान कुञ्ज के आन्तरिक परिसर में प्रवेश करते हैं। देखो, परिसर में आते ही भुवन भास्कर की रश्मियाँ भी कुछ प्रखर होने लगी हैं, इसलिये यहाँ आते ही गर्मी का आभास होने लगा है। इस कुञ्ज में हमेशा ऐसी ही ऋतु रहती है। यह ऋतु स्नान के लिये सुखदाई होती है। इस कुञ्ज में यह हलकी सी गर्माई ऐसी लगती है मानो स्नान कुञ्ज अपने प्यारे युगल के विरह में गर्म उसाँसे छोड़ रही है। सखी! पुष्प वाटिका का बहिरंग परिसर विविध रंग व विविध प्रकार के पुष्पों का है और यह आन्तरिक परिसर केवल श्वेत वर्ण के पुष्पों का होने से ऐसा लगता है मानो स्नान कुञ्ज बाहर से तो अनेक भाव प्रदर्शित करके मन की चंचलता दर्शा रही है लेकिन अन्तर में शांत है।

देखो सखी! अब हम स्नान कुञ्ज पहुँच गयी हैं। अब यह श्वेत मणियों से जड़ित, स्फटिक मणि से निर्मित इस मणि मण्डल पर चढ़कर जगमोहन (बरामदा) से होते हुए भीतर प्रवेश करें इससे पहले स्नान कुञ्ज के चारों तरफ चित्र-विचित्र फव्वारों को देखो। इस मणि मण्डल की चारों दिशाओं से चार मार्ग आ रहे हैं। चारों मार्गों के दोनों तरफ नहरें

व इनमें दोनों तरफ भाँति – भाँति प्रकार के फव्वारे जल से विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बना रहे हैं। उछल– उछलकर नृत्य करती यह जल धाराएँ व धाराओं की आकृतियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो ये स्नान कुञ्ज हम दोनों को श्रीप्रिया – प्रियतम जानकर आनन्दातिरेक से नाचने व मस्ती से झूमने लगी है। देखो सखी! स्नान कुञ्ज के जगमोहन में मणियों से जड़ित यह स्फटिक स्तम्भ चारों ओर कैसी शोभा पा रहे हैं। इनको देखने पर ऐसा लगता है मानो स्नान कुञ्ज ने अपने अन्तरंग परिकरों को चारों ओर श्रीयुगल सरकार की अगवानी के लिये अपने हाथों से सजाकर खड़ा किया हो। चारों ओर इसलिये खड़ा किया कि ना जाने किस ओर से श्रीप्रिया – प्रियतम आ जाएँ।

चलो सखी, अब स्नान कुञ्ज के भीतर चलकर इसकी शोभा का अवलोकन करें। स्फटिक मणि से निर्मित इस श्वेत वर्ण की स्नान कुञ्ज के ठीक बीच में ये दो स्फटिक चौंकियाँ हैं। इन पर बैठाकर सखियाँ श्रीयुगलवर को उबटन लगाती हैं। दोनों चौंकियों के चारों ओर छोटी – छोटी मणि चौंकियों पर रखे मणि पात्रों में इत्र, फुलेल तथा इन मणि

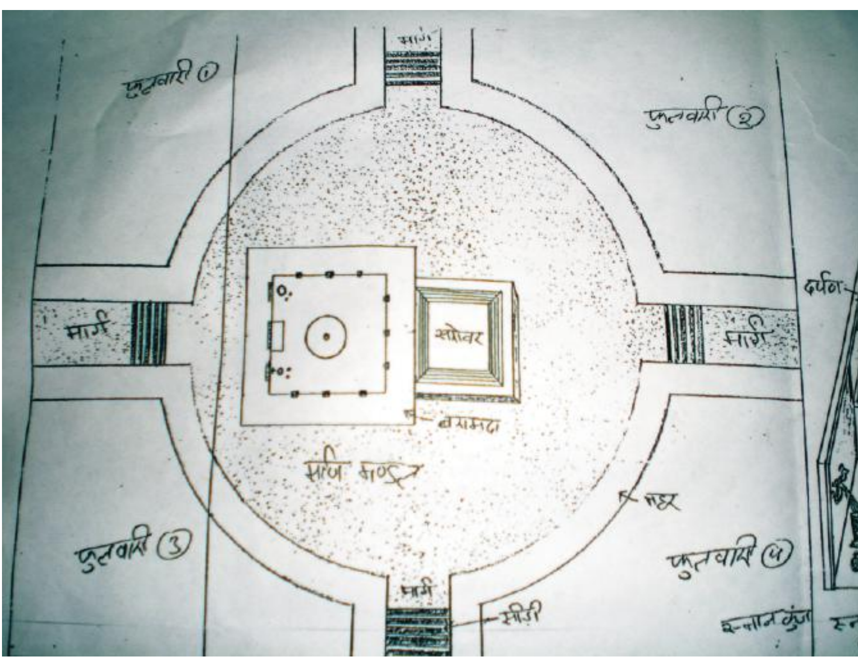

कटोरों में बादाम चिरौंजी की पिष्टी में केसर, कस्तूरी, हल्दी, चंदन, कपूर आदि अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों का मिश्रण बनाकर रखा जाता है। इन मणि की शीशियों से केवड़ा, गुलाब जल व कई प्रकार के इत्र लेकर सखियाँ हासविलास करती हुई उबटन में मिश्रण कर रसिक दम्पत्ति के श्री अंगों में उदवर्तन करती हैं।

कई सखियाँ अपने कोमल-कोमल हाथों से धीरे-धीरे श्रीयुगलवर के केशों में सुगंधित अतर फुलेल लगाती हैं। उस समय कुछ सखियाँ कुञ्ज के भीतर और कुछ बाहर जगमोहन में बैठ वाजिंत्र बजाकर परिहास पूर्ण गीत गाती हैं जिसको सुन-सुनकर श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों के हृदयों में प्रेमानन्द का सागर हिलोरे लेने लग जाता है।

उबटन मर्दन के बाद सखियाँ दोनों को सुरभित जल से स्नान कराती हैं। कभी सखियाँ इस होज में स्नान कराती हैं। इस होज में नाभिपर्यन्त जल रहता है। कभी-कभी सखियाँ दोनों को फव्वारे में स्नान कराती हैं। कभी रत्न कुण्डी के जल से तो कभी नल के जल से। कभी

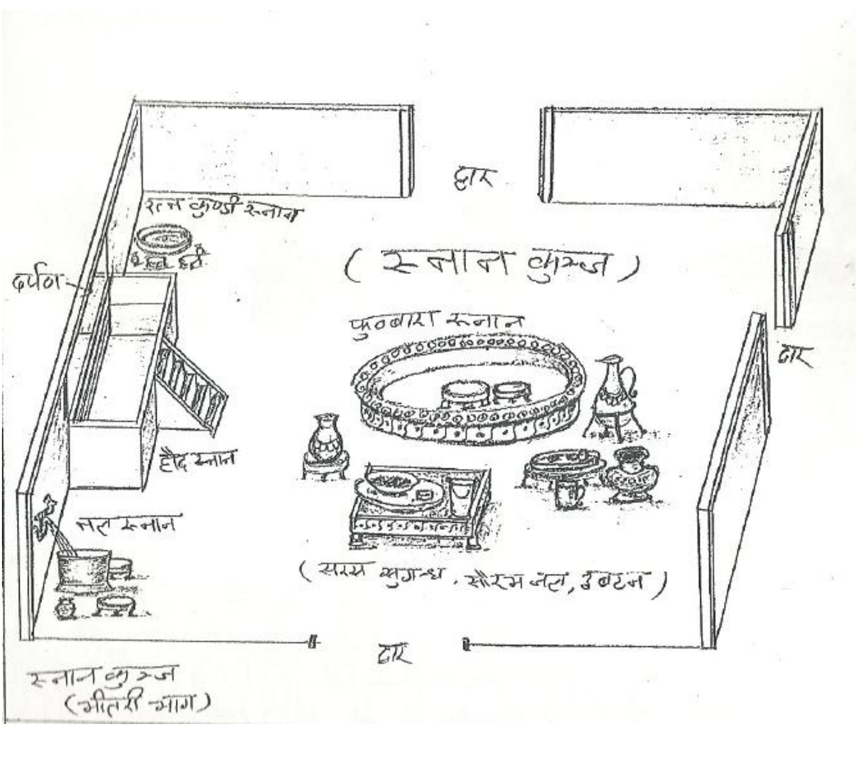

सरोवर में तो कभी यमुना जी में दोनों को सखियाँ स्नान कराती हैं। श्रीयुगलवर के यहाँ आने से पहले उनके स्नान की सारी तैयारी पहले ही सखियाँ कर देती हैं।

स्नान के बाद कोमल वस्त्र से श्रीअंगों को पोंछकर एक-एक वस्त्र धारण करा सखियाँ श्रीप्रिया लाल को शृंगार कराने के लिये पंचरंगी शृंगार कुञ्ज के लिये ले जाती हैं।

अरी सखी! आओ, अब शृंगार कुंज के लिये चलते हैं। जैसा कि पहले मैं बता चुकी हूँ पाँच योजन के विस्तार वाले श्री धाम वृन्दावन के ठीक बीच में कुंज शिरोमणि मोहन महल है। इस मोहन महल से एक चौथाई कोस (पौना कि.मी.) की दूरी पर महल के चारों तरफ यह मणिजड़ित स्वर्णमय गोला मार्ग है। इसी गोला मार्ग पर आठों दिशाओं में आठ मणि कुंज हैं। प्रथम **मंगल कुंज** व दूसरी **स्नान कुंज** तो तुमने देख ली है। अब तीसरी मोहिनी कुंज के लिये चलते हैं जिसको '**शृंगार कुंज**' कहते हैं। यह कुंज मोहन महल से पूर्व दिशा व अग्नि कोण के बीच स्थित है। शृंगार कुंज के चारों ओर पँचरंगी पुष्पों की विशाल वाटिका है।

सखी! चलते-चलते तुम रूक क्यों गयी हो? अच्छा, मैं समझ

गयी। पुष्प वाटिका की सुन्दरता व सुगन्ध में तुम्हारा मन उलझ गया है। तुम्हारे नेत्र पुष्प वाटिका के मनोहर दृश्य में अटक गये हैं। इसलिए तुम्हारे नेत्र अपलक पुष्प वाटिका को निहारते–निहारते स्थिर हो गये और तुम आगे बढ़ना ही भूल गई।

सखी! ये वनराज वृन्दावन है। यहाँ के कण–कण व पात–पात में अपार शोभा श्री का अचल निवास है। तुम्हारे नेत्र यदि किसी भी दृश्य को देखने लग जाएँ तो अनन्त काल तक देखते रहने पर भी हटेंगे नहीं बल्कि ओर–ओर देखने को ललचाते रहेंगे। ऐसी अद्‌भुत सीमातीत यहाँ की शोभा श्री है।

सखी! मैं तुम्हारे हृदय में नेत्रों के रास्ते सम्पूर्ण श्री वृन्दावन को भरना चाहती हूँ। यदि इसी प्रकार खड़ी–खड़ी एकटक एक ही दृश्य को देखती रहोगी फिर भला मेरा मन भाया कैसे पूरा हो पाएगा? इसलिए मेरे साथ आगे बढ़ो और विविध प्रकार के व विविध रंगों के पुष्पों से विभूषित इस मनोहर पुष्प वाटिका का अवलोकन करती हुई शृंगार कुंज चलो।

देखो सखी! चलते–चलते यह सुन्दर चौराहा आ गया है। यहाँ विविध प्रकार व विविध रंगों के पुष्पों के फव्वारे देखो। यह केसर का फव्वारा देखो! इसमें से पुष्पों के परागकण जल फव्वारे की तरह निकलकर हवा के झोंकों से चारों ओर फैल रहे हैं। साथ ही इसमें से अनेक प्रकार की सुगन्ध निकलकर दूर–दूर तक फैल रही है। देखो, यह गुलाब जल का फव्वारा है और इस तरफ ये अनेक प्रकार के सुगन्धित जल के फव्वारे मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। देखो, इस चौराहे के बीच में फव्वारों की अद्‌भुत छटा।

अरे ये क्या? तुम अभी तक पुष्पों के फव्वारे को देखती वहीं खड़ी–की–खड़ी रह गयी। सखी! इधर मेरे पास आ, इधर भी देखो।

सखी! हमारी दायीं तरफ वाला मार्ग मोहन महल तथा बायीं तरफ वाला मार्ग अष्टद्वारी महल के द्वार से निकलकर श्री ललिता जी की **अनंग सुखदा** नामक कुंज से होता हुआ वन के बीचों–बीच से होकर यमुना घाट जा रहा है। अब हम यह सुंदरातिसुंदर चौराहा पार करके सीधे आगे शृंगार कुंज की तरफ बढ़ती हैं।

शृंगार कुञ्ज

सखी! जब इस मार्ग से श्रीप्रिया-प्रियतम हम सखियों के साथ प्रातः स्नानोपरान्त परस्पर गलबहियाँ दिए चलते हैं तो यहाँ की प्राकृतिक छटा कुछ ओर ही निराली लगने लग जाती है। श्रीप्रिया लाल युगलवर उस वाटिका की शोभा निरखते हुए चलते हैं तो इन लताओं व वृक्षों की शाखा-प्रशाखा पत्र, पुष्प व फलों से लदी हुई ऐसी शोभा सम्पन्न हो जाती है मानों ये लताएँ व वृक्ष अपनी शाखा-प्रशाखा रूपी हाथों में अपने प्रियतम श्रीयुगल दम्पत्ति के लिए उपहार लिए खड़े हों। वन की भूमि पर छायी हरियाली ऐसी जान पड़ती है मानो हरित बिछान बिछी हो। वृक्षों व लताओं से गिरे रंग-बिरंगे पुष्प उस हरी-हरी बिछान पर ऐसे फब रहे होते हैं मानो युगल सरकार के लिए वृक्षों ने अपनी पलकें बिछाई हों।

सखी! इन लघु वृक्षों पर बैठे सुन्दर पक्षियों को तो देखो! ये युगल नाम की रट लगाते हुए कितने मनमोहक लग रहे हैं। अरी सखी! सुनो, यहीं कहीं वृक्ष की डाल पर बैठी कोयल पत्तों में छिपकर अपने पंचम स्वर से अनंग की लिखी प्रेम पत्रिका पढ़ रही है। पपीहा पीहू-पीहू की रट लगाकर श्रीवन में प्रेम का संचार कर रहा है। शीतल मंद-सुगंध समीर मदमत्त किए दे रही है। सारस व हंसों के जोड़े अपने हृदयों में युगलरूप दर्शन कर मत्त हो रहे हैं। तभी तो इनके नेत्र बंद हैं। ये भीतर-ही-भीतर युगलरूप सुधा रस का पान कर चित्र लिखित से हो गये हैं। ऐसा लग रहा है मानो ये पत्थर की मूर्तियाँ हों।

देखो सखी! अब हम इस नहर के छोटे से सेतु को पार करके वाटिका के भीतरी परिसर में प्रवेश कर रहे हैं। वो देखो सखी सामने, इस पंचरंगी पुष्प वाटिका के मध्य में पंचरंगी शृंगार कुंज दिखाई दे रही है। अब हम वहीं चलती हैं।

सखी! पंचरंगी पुष्प वाटिका को देखते- देखते अब हम शृंगार कुंज के मणि मण्डल पर आ गई हैं। यह कुंज स्नान कुंज के दक्षिण दिशा में है। स्नान कुंज से चलकर इतनी दूरी (एक कि.मी) तय हो गई पता ही नहीं चला।

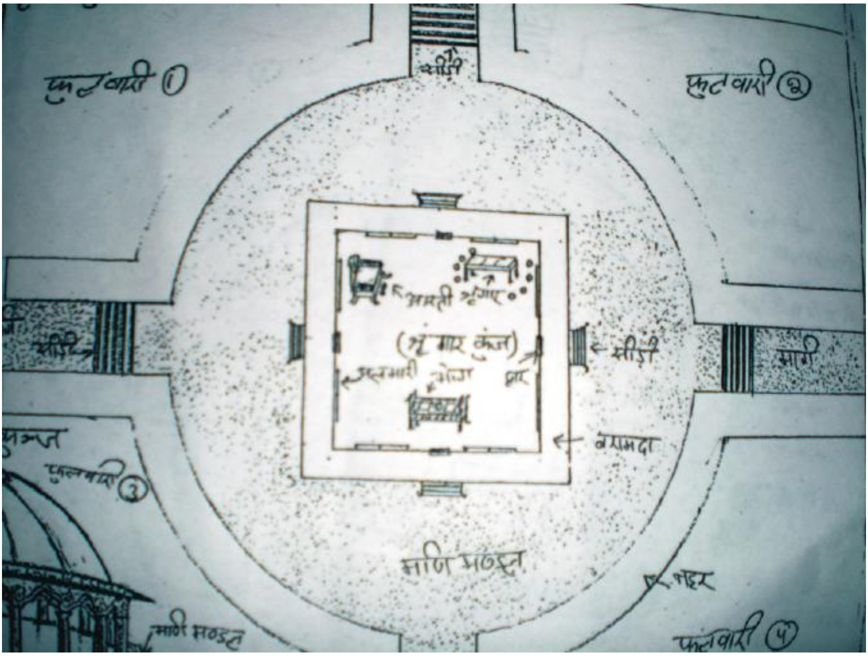

कुंज के चारों तरफ मणि जड़ित सुंदर स्तम्भों का आधार लिए यह जगमोहन (बरामदा) देखो। इसमें पंचरंगी रत्न व मणियाँ जड़ी हैं। मणि मण्डल के चारों ओर छोटे-छोटे पौधों व लताओं के गमलों की शोभा देखो। सखी! इस शृंगार कुंज में हम सखियाँ अपने प्राण वल्लभ युगल दम्पत्ति को वस्त्र-अलंकारों से विभूषित कर उनकी मनोहारी रूप सुधा का पान करती हैं और नेत्रों के द्वार से श्रीयुगल रूप को हृदयंगम करती हैं। आओ सखी, अब हम इस कुंज के भीतर चलती हैं।

देखो सखी! ये अनेक शृंगार दान हैं। इनमें अनेक प्रकार के वस्त्र व आभूषण रखे हैं। कुंज के भीतर चारों ओर हीरों से जड़ित दर्पण लगे हैं। सखी ये दर्पण बहुत ही विचित्र हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम जब दर्पण में अपना युगल रूप का अवलोकन कर वन-बिहार के लिए कुंज से निकलते हैं, तो उनके जाने के बाद भी बहुत देर तक इन दर्पणों में युगल छवि के दर्शन होते रहते हैं।

चौकियों पर सेवा सामग्री से सजे इन रत्न जड़ित थालों को देखो। बीच-बीच में दिवारों पर लगे बड़े-बड़े दर्पणों को देखो। इनके चारों ओर

पंचरंगी रत्न मणियाँ जड़ी हैं। द्वारों पर पंचरंगी रत्न मणियों की झालरों व लड़ियों को तो देखो! सखी, सूर्य की रश्मियाँ इन पंचरंगी मणियों से होकर भीतर कुंज में प्रवेश कर रही हैं। इसलिए पूरा कुंज पंचरंगी भासने लगा है। दर्पणों के नीचे रखी इन चौंकियों पर बैठकर सखियाँ सेवा की सामग्री तैयार करके श्रीप्रिया-प्रियतम के आने से पहले सजाकर रख देती हैं।

इस विशाल दर्पण के सामने मणि जड़ित इस चौंकी पर श्रृंगार के लिए जब युगल सरकार विराजते हैं तब हम सखियाँ दोनों को लीलानुरूप वस्त्र व अलंकार धारण कराती हैं। कभी-कभी तो प्राणवल्लभ स्वयं श्रीस्यामा जू की वेणी गूथंन कर वेणी को विविध प्रकार के पुष्पों से समलंकृत करते हैं। उस समय अनेक प्रकार से हास्य-विनोद होता है।

सखी, ये श्रृंगार भोग चौंकी है। रत्न जड़ित इस स्वर्ण चौंकी पर वस्त्र बिछाकर अनेक प्रकार के पकवानों से सजा श्रृंगार भोग स्वर्ण थाल में रखा जाता है। युगलवर परस्पर एक दूसरे की तरफ मुख करके बैठते हैं, बीच में थाल होता है। तब प्रेम सहित आदरपूर्वक मनोहार कर-करके परस्पर प्रशंसा करते हुए एक दूसरे के मुख कमल में ग्रास देते हुए श्रृंगार भोग आरोगते हैं।

श्रृंगार भोग आरोग लेने के बाद दोनों को आचमन कराके मुखवास (सुगंधित चूर्ण) दिया जाता है। फिर बीरी (ताम्बूल) का भोग लगाकर रोली का तिलक किया जाता है। तिलक पर मोतियों के अक्षत धराये जाते हैं। इसके बाद सखियाँ रसिक दम्पत्ति को पंचरंगी मणियों से

जड़ित इस सिंहासन पर विराजमान कराती हैं। तब यूथेश्वरी श्री रंगदेवी जी सुन्दर रीति से युगल छबि के दर्शन करती हुई आरती उतारती हैं।

आवो सखि मिल आरति गावो । लाल प्रिया कूँ लाड़ लड़ावो ।।
रतन सिंहासन दोउ विराजैं, नील पीत पट तन पै साजैं ।
निरख निरख झाँकी सुख पावो, आवो सखि मिल आरति गावो ।।
चंद्र बदन की सोभा प्यारी, बड़ी बड़ी अखियाँ कजरारी ।
इन नैनन सों नैन मिलावो, आवो सखि मिल आरति गावो ।।
नील कमल कर मुरली सोहै, अंग अंग छबि मन कूँ मोहै ।
नैन द्वार लै हिये बसावो, आवो सखि मिल आरति गावो ।।
अग्रवर्ति आरती उतारैं, तन मन धन सब इन पै वारैं ।
कुंदप्रिया बलिहारी जावो, आवो सखि मिल आरति गावो ।।

समस्त सखियाँ युगल रूप सुधा रसपान करती हुई जय-जयकार करती हैं। बार-बार युगल छबि पर बलिहार जाती हैं। उस समय सबके हृदयों में आनन्द का सागर उमड़ने लगता है, आनन्द की बाढ़ सी आ जाती है।

आओ सखी! अब राजभोग कुञ्ज चलती हैं जहाँ श्रीप्रिया-प्रियतम मध्याह्न के समय राजभोग आरोगते हैं। यह राजभोग कुञ्ज मोहन महल के अग्नि कोण व दक्षिण दिशा के बीच मोहन महल से एक चौथाई कोस (पौना कि.मी) की दूरी पर विशाल फुलवारी के बीच स्थित है।

सखी! फुलवारी की शोभा देखते-देखते यह चौराहा आ गया है। हमारी दायीं तरफ जाने वाला मार्ग मोहन महल और बायीं तरफ जाने वाला मार्ग अष्टद्वारी महल के अग्नि कोण वाले द्वार से श्रीविशाखा सखी की **आनन्द** नामक कुञ्ज से होता हुआ सघन वन को पार करके श्री यमुना घाट तक जाता है। अब हम इस चौराहे को पार करके सीधे आगे राजभोग कुञ्ज की तरफ चलती हैं।

राजभोग कुञ्ज

देखो सखी! वो सामने सघन हरियाली तथा बहुरंगी व अनेक

प्रकार के पुष्पों की विशाल चार पुष्प वाटिकाओं के बीच मर्कत मणि जड़ित मणि मण्डल पर गोलाकार विशाल राजभोग कुञ्ज दिखाई दे रही है। यह कुञ्ज मर्कत मणियों से जड़ित होने के कारण हरित वर्ण की दिखाई दे रही है।

सखी! यद्यपि यहाँ सदा ग्रीष्म ऋतु वर्तमान रहती है तथापि यहाँ सदा शीतल मन्द सुगन्धित हवा चलती रहती है। इससे यहाँ की ग्रीष्म ऋतु सदा सुहावनी बनी रहती है। बीच- बीच में आकाश में बादल आते -जाते रहते हैं। कभी धूप, कभी छाया आती-जाती रहती है। सखी! देखो, आकाश की ओर, आकाश में श्वेत, नील, पीत, अरूण, श्याम एवं कज्जल वर्ण के बादल भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाते व बदलते धीमी गति से आगे बढ़ रहे हैं। यह चित्र-विचित्र प्रकार के बहुरंगी बादल कितने प्यारे लग रहे हैं। देखो सखी! इधर देखो! ये गौर-श्याम वर्ण के बादलों की दो टुकड़ियाँ कभी आपस में मिल जाती हैं तो कभी कुछ दूरी बनाकर साथ-साथ चलती हैं। कभी दोनों मिलकर के एक बन जाती हैं। इन दोनों के आकार, रंग व क्रिया-कलाप को देखकर ऐसा लगता है मानो युगलवर रसिक दम्पत्ति रस क्रीड़ा करते हुए हमारे साथ -साथ चल रहे हैं। ग्रीष्म ऋतु में शरद ऋतु का आभास कराते ये बादल देखकर और इस त्रिविध समीर का स्पर्श पाकर मन की मयूरी उमंग में नाचने लगी है। आकाश में उड़ती हुई बगुलों की ये चारों पंक्तियाँ ऐसी लग रही हैं मानो श्रीप्रिया-प्रियतम के नुपूर खुलकर बिखर गये हों।

सखी! अब हम पुष्प वाटिका के भीतरी परिसर में प्रवेश करती हैं। देखो, यहाँ बहुरंगी व बहु प्रकार के पुष्पों की चार विशाल क्यारियाँ हैं। इन चारों विशाल क्यारियों के चारों ओर गोलाकार मणि जड़ित मार्ग व मार्ग के दोनों ओर आठ फुट चौड़ी नहर है तथा नहरों के दोनों तटों पर दो हाथ ऊँची मैंहदी की हरित दीवार (बाढ़) है। सड़क के दोनों ओर थोड़ी- थोड़ी दूरी पर फूलों व फलों से लदे पंक्तिबद्ध छोटे- छोटे वृक्ष बहुत ही प्यारे लग रहे हैं।

सखी! इस राजभोग कुञ्ज के चारों तरफ एवं फुलवारी के चारों

मुख्य मार्गों व उपमार्गों तथा पगडंडियों के दोनों ओर फव्वारों की भरमार है। सखी! यहाँ के फव्वारों की अनुपम रचना तो देखो, रंग-बिरंगे फुवारों में जल से बने पुष्पों की वर्षा हो रही है। यह देखने भर के लिये पुष्प हैं, वास्तव में तो यह जल ही हैं। फव्वारों से निकलता रंग -बिरंगा जल ही कई प्रकार के पुष्पों की आकृतियाँ धारण कर लेता है। सखी! अपना हाथ गिरते हुए पुष्पों के नीचे करो, देखो तुम्हारे हाथ में केवल जल ही आएगा।

सखी! इधर भी देखो, ये केसर क्यारी में फव्वारे और इनमें जल से बने पुष्पों की आकृतियाँ। सामने देखो, एक ही फव्वारे में सहस्र -सहस्र धाराएँ छूट रही हैं। सखी! ध्यान से देखना, बीच-बीच में श्रीप्रिया -प्रियतम के बिहार करते चलचित्र भी दिखाई दे रहे हैं। ये रंग-बिरंगे जल से बने चलचित्र साक्षात् की तरह भास रहे हैं। देखो सखी! मोतिया व बेला की क्यारी में फव्वारों से निकलते जल में होरी लीला का अनुकरण हो रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे युगलवर अनेकों सखियों के संग होली खेल रहे हैं। ऐसा बिल्कुल भी नहीं लग रहा है कि ये केवल जल-ही-जल है। ऐसा लगता है जैसे ये लीला साक्षात् हो रही है। सखी! इस समय जो संगीत लहरी कानों में अमृत उढ़ेल रही है ये भी इन फव्वारों से ही आ रही है। ये देखो, तुम्हारे पार्षव में फव्वारों से निर्मित जलमयी सखियों व उनके वाद्यन्त्र की आकृतियाँ ये इसी फव्वारे का चमत्कार है। सखी! इधर सारे संगीतमय फव्वारे अनेकों प्रकार से श्रीश्यामा-श्याम की रसमयी लीलाओं का दर्शन करा रहे हैं। फव्वारों से निकलती जल आकृतियाँ व संगीत से सारा वातावरण रसमय हो रहा है।

सखी! चलते-चलते फुलवारी व फव्वारों का मनोरम दृश्य देखते हुए हम राजभोग कुञ्ज पहुँच गई हैं। ये देखो सामने मर्कतमणियों से खचित ये मणि मण्डल व मण्डल पर बना राजभोग कुञ्ज। मणि मण्डल के चारों ओर नहर में श्वेत, रक्त, पीत, अरूण व नील वर्ण के कमल कितने प्यारे लग रहे हैं। इन पर मंडराते व गुनगुनाते इन भ्रमरों को तो देखो। सखी! ध्यान से सुनो, ये भ्रमर युगल नाम गुनगुना रहे हैं।

सखी! अब हम चार सीढ़ियाँ चढ़कर मणि मण्डल पर पहुँच गई हैं।

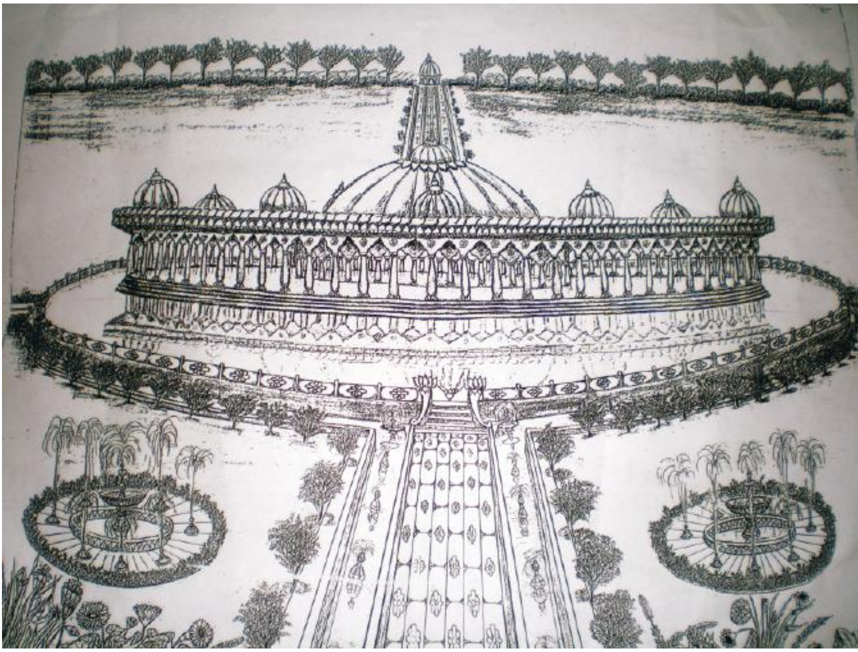

बत्तीस मणिमय स्तम्भों पर यह सुन्दर गोलाकार कुञ्ज मर्कत मणियों से निर्मित है। इसके चारों ओर गोलाकार बरामदा जिसमें चौंसठ मणिमय स्तम्भ लगे हैं। बरामदे के ऊपर आठ दिशाओं में आठ स्वर्णमय गुम्बद व बीच में विशाल स्वर्णमय रत्न जड़ित गुम्बद हैं। राजभोग कुञ्ज के प्रत्येक स्तम्भ में हस्त प्रक्षालनार्थ छोटे – छोटे मणिमय नल लगे हैं। प्रत्येक नल के पास ऊपर की तरफ एक – एक मणि जड़ित दर्पण लगा है।

सखी! जब श्रीप्रिया – प्रियतम इस राजभोग कुञ्ज में पहुँचते हैं तो मणि मण्डल के चारों ओर नहर में लगे फव्वारे छूटने लगते हैं। सभी फव्वारों का रूख राजभोग कुञ्ज की तरफ ही होता है। उस समय फव्वारों के चलने से ऐसा लगता है मानो वर्षा हो रही हो। जल की धाराएँ वायु के वेग व फव्वारों के दबाव से कुञ्ज के भीतर भी प्रवेश करने लगती हैं। बिन बादल बरसात का आनन्द ही कुछ ओर होता है। मणि मण्डल पर बहते जल में कुञ्ज का प्रतिबिम्ब पड़ने से मणि मण्डल ओर भी सुहावना लगने लगता है।

सखी! राजभोग कुञ्ज से दायीं ओर वाला मार्ग मोहन महल व

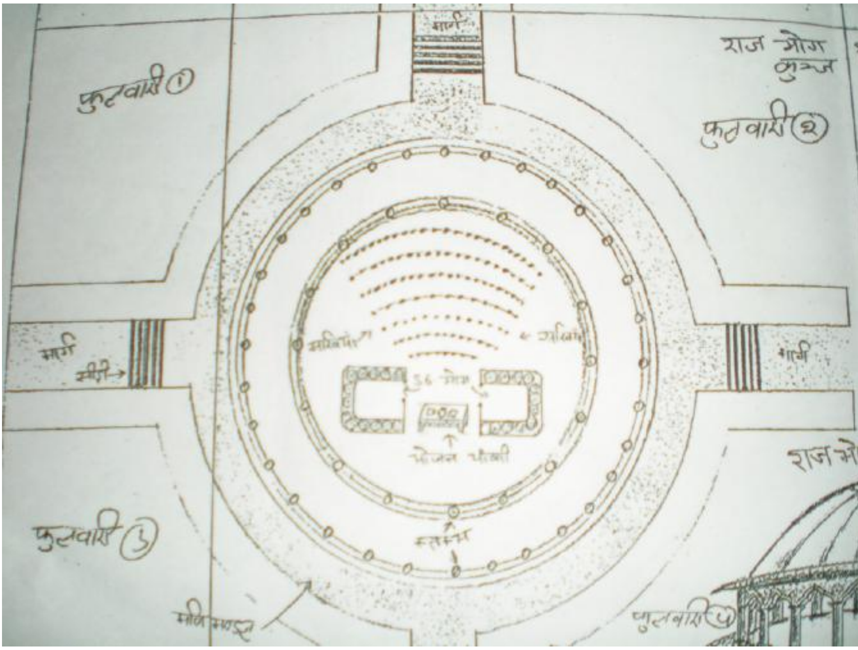

बायीं ओर वाला मार्ग अष्टद्वारी महल की वसुदा कुञ्ज के बीच वाले कोने की तरफ जा रहा है और सामने वाला सीधा मार्ग श्री चम्पकलता सखी के मार्ग को पार करता हुआ संध्या कुञ्ज की तरफ जा रहा है।

सखी! अब हम राजभोग कुञ्ज के भीतर चलते हैं। देखो, ये रत्न जड़ित स्वर्ण आसन है जिस पर आसीन होकर श्रीलाड़िली–लाल राजभोग आरोगते हैं। दोनों के बीच कंचन चौकी पर स्वर्ण थाल में सब प्रकार की भोग सामग्री सजाकर सखियाँ रख देती हैं। छप्पन प्रकार के भोग व छत्तीस प्रकार के व्यंजन परसे जाते हैं। जिनमें छह प्रकार (मीठा, नमकीन, खट्टा, कटु, तीखा, कसैला) के स्वाद होते हैं। ये चार प्रकार (दाँतों से काटकर, चाटकर, पीकर व चूसकर) से आरोगे जाते हैं।

लाड़–लड़ीले युगलवर अपनी रूचि अनुसार परस्पर हास्य विनोद करते हुए राजभोग आरोगते हैं। दोनों रसिक रसीले परस्पर एक दूसरे के मुख में मनुहार पूर्वक ग्रास देकर स्वाद की प्रशंसा करते हुए अति प्रसन्न होकर सखियों की ओर देखते हैं। एक–एक सखी का नाम ले–लेकर उनके नाम से एक दूसरे के मुख में ग्रास देने की होड़ करने लगते हैं।

श्रीयुगलवर राजभोग आरोगते हुए परस्पर रूप सुधा रस पान करने में निमग्न हो जाते हैं। तब सखियाँ दोनों को सावधान करती हैं। राजभोग चौंकी के दोनों ओर रखे छप्पन भोगों में से सखियाँ कंचन थाल में दोनों का रूख देखकर अमृतमयी सामग्री परसती रहती हैं।

उसी समय अष्ट सखियों की अर्ध–चन्द्राकार पंगत भी बैठ जाती है। अष्ट सखियों के साथ–साथ अन्य सखियाँ भी पंगत में बैठ जाती हैं और श्रीप्रिया–प्रियतम के साथ–साथ राजभोग आरोगती हैं। उस समय श्री चम्पकलता जी के यूथ की सखियाँ सबको राजभोग आरोगवाती हैं।

श्रीप्रिया–प्रियतम के राजभोग आरोगने के बाद श्रीहरिप्रिया सखी दोनों को आचमन कराती हैं। तद्पश्चात् बीरी (सुगन्धित पान) आरोगवाकर आरती उतारती हैं।

राज भोग आरती उतारो । नैनन रस भरी छबि निहारो ।।
सुरभित सरस पान को बीरा, दोउ आरोगत प्रेम अधीरा ।
मँद मुस्कान रूप अति प्यारो, राज भोग आरती उतारो ।।
छैल छबीली सुंदर जोरी, छबि रस पीवति अखियाँ मोरी ।

इन बिन षट् रस लागत खारो, राज भोग आरती उतारो ।।
गलबहियाँ दे बैठे प्यारे, इक पल होय सकैं नहिं न्यारे ।
जोरी निरखि निरखि हिय धारो, राजभोग आरती उतारो ।।
दोउन पे जल वार पियोरी, युगल रसिक मुख देख जियोरी ।
कुंदप्रिया जय सब्द उचारो, राज भोग आरती उतारो ।।

श्रीयुगल चन्द्र की रूप माधुरी के दर्शन कर दोनों पर जल फेरकर पीती हैं और जय-जयकार करके श्रीलाड़िली-लाल का यशगान करती हैं। फिर युगल जोड़ी परस्पर गलबहियाँ दिए हंस की गति को लज्जित कर लटकीली-मटकीली मन्द गति से मोहन महल की ओर विश्राम करने चल देती हैं। इसके बाद वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाती है।

वर्षा ऋतु एवं फुलवारी वर्णन

अरी सखी! देखो तो सही, वर्षा ऋतु कैसी सुहावनी लग रही है। वर्षा ऋतु आगमन से वृन्दावन कैसा शोभायमान लग रहा है। इसका अपूर्व सौन्दर्य हृदय में प्रतिक्षण प्रेम का संवर्धन करता हुआ परम शोभा को प्राप्त हो रहा है। श्रीवन की समस्त भूमि हरी-भरी होकर कैसी फब रही है। श्यामल मेघ उमड़-उमड़कर गर्जन करते हुए बरस रहे हैं। इनका श्यामल वर्ण कितना सुहावना लग रहा है। श्यामल मेघों को देखकर ऐसा लगता है मानों स्वयं प्रियतम घनश्याम ही अपनी प्राणप्रिया श्रीस्वामिनी जी के दर्शन व स्पर्श के लिये बड़ी उतावली से यहाँ आ रहा हो। मेघों की गर्जन व सन-सन की ध्वनि करती शीतल, मंद, सुगंध वायु एवं सुन्दर पक्षियों का कलरव मानों श्रीप्रिया-प्रियतम की अव्यक्त प्रेम केलि को व्यक्त कर रहा हो। हे सखी! आठों दिशाओं से उमड़ती-घुमड़ती घटाएँ बड़ी ही सुहावन-मनभावन लग रही हैं। घटाओं के साथ बीच-बीच में बिजली की चमक से सम्पूर्ण वृन्दावन में चकाचौंध सी छा रही है।

सखी, वैसे तो श्रीवृन्दावन के सभी वृक्ष सदाबहार हैं, वृक्षों पर सदा बसंत का राज रहता है, इन पर हमेशा हरियाली छाई रहती है, यहाँ के वृक्ष सदा नव पल्लव व फल-फूलों से छाए रहते हैं तथापि वर्षा ऋतु में

इनकी हरियाली ओर भी बढ़ जाती है। वृक्षों की कोई भी ऐसी जाति नहीं जो इस निकुञ्ज वन में न हो। वर्षा से भीगी इनकी डालियाँ ओर अधिक झुकी जा रही हैं। पवन के झोंको से झूलती हुई इनकी डालियों को देखकर ऐसा लगता है मानो यहाँ के वृक्ष वर्षा ऋतु के आगमन से स्वागत के लिये नृत्य करने लगे हैं। माधवी, मालती, जूही, चमेली, लवंग आदि की लताएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानों मेघों की गर्जन व बिजली की तेज चमक से भयभीत हो वृक्षों से लिपट गई हों और वृक्षों के हरे- भरे पत्तों में छिपना चाहती हों।

वृन्दावन में गूलर, शहतूत, जामुन, करौंदा, बेर, खिरनी, बिल्व, पपीता, छुवारा, बादाम, आलू- बोखारा, अखरोट, सुपारी, मुनक्का, मौलसीरि, लिसौड़ा, कदम्ब, कुन्द, केवड़ा, बेला, जूही, माधुरी, मालती, चम्पा, पीपल, वट, पाकर, सीरस, शीशम, साल, अर्जुन, विजयसार, खैर, बबूल, रीठा, भोजपत्र, पलास, सेमल, धौं, करील, सागोन, समी, अशोक, रूद्राक्ष, नीम, आम, आंवला, अनार, कदली, नारियल, खजूर, ताल, सेब, नाशपाति, अमरूद, नारंगी, नींबू, इमली, कटहल, बढ़हल, महुआ, कैत, कमरख, फालसा, शरीफा, अनन्नास, मकोय, गुल, दुपहरिया, गुतुर्रा, गुलपरी, मखमली, मटकन, हारशिंगार, अगस्त्य, गुलदौना, मैहंदी, केसर, तमाल, पिंडखजूर, लीची आदि अनेक जातियों के वृक्ष अपनी शोभा व अपार सम्पत्तियों से श्रीलाड़िली - लाल की सेवा में तत्पर दिखाई दे रहे हैं।

सखी देखो, चकवा, चातक, शुक, पिक, कपोत, हंस, सारस, मयूर आदि पक्षी जो अब तक ग्रीष्म ऋतु के कारण वृक्षों के पत्तों में छिपकर बैठे थे, वर्षा ऋतु आते ही इनका अंग- अंग हर्षातिरेक से पुलकित हो उठा है। इनके मनोहारी कलरव से समस्त वृन्दावन मुखरित हो उठा है। परस्पर व अकेले में किलोल करते हुए ये पक्षी कितने मनभावन लग रहे हैं। नृत्य की मुद्रा में ये मोर अपने पंखों को फैलाकर वर्षा ऋतु का स्वागत करता हुआ कितना प्यारा लग रहा है। वर्षा ऋतु आते ही सुखदायक शीतल, मंद, सुगंध वायु बहने लगी है। त्रिविध वायु का शरीर में स्पर्श होते ही ऐसा लगने लगा मानो किसी ने तपते हुए शरीर पर अमृत की शीतल बौछार कर दी हो। इससे शरीर पर पड़े श्रम बिन्दु

सूखने लगे हैं।

देखो सखी, सम्पूर्ण वृन्दावन सुवासित हो उठा है। मतवाले भ्रमर भी झुंड-के-झुंड एकत्रित होकर गुनगुनाते हुए पुष्पों पर मंडराते बहुत ही प्यारे मालूम पड़ रहे हैं। वर्षा का जल बहकर कुछ तो मार्गों के दोनों तरफ छोटी-छोटी नहरों से होता हुआ यमुना की ओर बह रहा है और कुछ स्थल-स्थल पर रूककर छोटी- छोटी हृदनियों का रूप ले रहा है। पानी के साथ बहकर आए रंग-बिरंगे विविध प्रकार के पुष्प इन छोटी-छोटी हृदनियों में एकत्रित होकर विविध प्रकार की आकृतियाँ बनाकर तैरते हुए बड़े ही सुहावने लग रहे हैं। मार्गों के दोनों ओर नहरों व फुलवारी में बने रत्नमय घाट व सीढ़ीदार छोटे-छोटे सरोवरों में खिले नील, रक्त, पीत, श्वेत कमल व उन पर मंडराते काले-काले भ्रमर गुञ्जार करते कितने प्यारे लग रहे हैं। आज मानों सम्पूर्ण वृन्दावन में सुन्दर छबि की तरंगे उठ रही हों। सखी, सावन का यह मास तो बहुत ही सुखदायक व मनोरथों को पूर्ण करने वाला है।

सखी, वर्षा कुछ थम सी गई है। चलो, अब यहाँ (राजभोग कुञ्ज) से हम संध्या कुञ्ज के लिये चलती हैं। यह संध्या कुञ्ज अष्ट मोहिनी कुञ्जों में पांचवी कुञ्ज है। यह मोहन महल से दक्षिण दिशा व यम कोण के बीच मोहन महल से एक चौथाई कोस (पौना कि.मी) पर पड़ती है। यह संध्या कुञ्ज राजभोग कुञ्ज से पश्चिम दिशा की तरफ इतनी ही दूरी (पौना कि.मी) पर पड़ती है। सखी, ये तो मैं बता ही चुकी हूँ कि ये आठों कुञ्जें मोहन महल की आठों दिशाओं में एक चौथाई कोस (पौना कि.मी) की दूरी पर एक ही गोल मार्ग पर पड़ती हैं। इन्हीं अष्ट कुञ्जों में हम सखियाँ अपने हृदयधन श्रीयुगलकिशोर की अष्टयाम सेवा का सुख लेती हैं। श्रीप्रियालाल की रसमयी सेवा ही हमारा जीवन सर्वस्व व प्राणों का पौषक तत्त्व है। यह अष्टयाम सेवा सुख ही हमारे जीवन के लिये संजीवनी बूटी है।

सखी, अब संध्या कुञ्ज की तरफ चलती हुई व फुलवारी को देखती हुई मेरी बात भी सुनती रहो। श्रीयुगल दम्पत्ति को राजभोग कुञ्ज में राजभोग आरोगवाकर सखियाँ दोनों को मोहन महल विश्राम के लिये

ले जाती हैं। मार्ग में वर्षा से भीजते व बचते हुए तथा अनेक प्रकार से किलोल करते हुए मोहन महल के आंगन में अष्टकोण सिंहासन (मंत्रपीठ) पर श्रीप्रिया-प्रियतम मध्याह्न के समय सर्वेश्वर रूप से विराजमान हो जाते हैं। तब समस्त सखियाँ जयगान करती हुई स्तवन करती हैं। इसके बाद श्रीलाड़िली लाल को पुष्प शैय्या पर विश्राम कराया जाता है, फिर सखियाँ उत्त्थापन कराती हैं। उत्त्थापन भोग आरोग-वाकर आचमन करा, मुखवास (सुगंधित चूर्ण) देकर वस्त्र, अलंकारों से दोनों को सुसज्जित करती हैं। इसके बाद श्रीयुगलकिशोर समस्त सखी, सहचरियों सहित वन विहार के लिये मोहन महल से निकलते हैं।

सखी! चलते-चलते हम चौराहे पर पहुँच गयीं, पता ही नहीं चला। देखो सखी, हमारी दायीं ओर वाला मार्ग मोहन महल व बायीं ओर वाला मार्ग श्रीचम्पकलता जी की कुञ्ज से होता हुआ यमुना के चम्पक घाट तक जा रहा है और इस चौराहे को पार करके सामने सीधा मार्ग संध्या कुञ्ज की तरफ जा रहा है।

सखी, मोहन महल से जब श्रीप्रिया- प्रियतम वन विहार करते हुए संध्या कुञ्ज पहुँचते हैं तो इसके कईं मार्ग हैं। कभी-कभी मोहन महल से सीधे संध्या कञ्ज में पहुँचते हैं तो कभी चम्पकलता सखी की **कामलता** नामक कुञ्ज वाले इस मार्ग से होते हुए इस चौराहे से सीधा संध्या कुञ्ज की तरफ मुड़ जाते हैं तो कभी अष्टद्वारी महल के दक्षिण द्वार के सामने से होकर विशद कुञ्ज के बीच वाले कोने से होते हुए संध्या कुञ्ज पहुँच जाते हैं।

सखी, मोहन महल से वनविहार करते हुए संध्या कुञ्ज तक पहुँचने के जितने भी मार्ग हैं, इन सब मार्गो के दोनों ओर अनेक प्रकार के फूल बंगले व विविध प्रकार के पुष्पों की अद्भुत कला -कृतियाँ हैं। प्रतिदिन इनका निर्माण फूल सखी व इनके यूथ की सखियों द्वारा होता है। यह फूल सखी श्रीरंगदेवी जी की अष्ट सखियों में सातवीं सखी प्रेम मञ्जरी जी के परिकर की प्रथम सखी वृन्दा जी हैं। यह वृन्दावन की अधिष्ठात्री सखी हैं। फूल सखी (वृन्दा) की फूली फूलवारी में फूलों से निर्मित कलाकृतियों का अवलोकन करते हुए प्रफुल्लित मन से जब

श्रीयुगलवर वन विहार करते हैं तो सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी, मञ्जरी गण दोनों को प्रसन्न देख-देखकर फूली नहीं समाती। उस समय कोई सखी श्रीप्रिया-प्रियतम पर चंवर ढुलाती है, कोई मोरछल ढुलाती है तो कोई पंखा झलती है, कोई सखी पानदान, कोई जल झारी तो कोई सुन्दर हाथों में मनोहर दर्पण लिये होती है। सभी सखियाँ समयानुकूल फूल सखी के मनोरथ के अनुसार पद गायन करती हैं।

फूलन की बाँकी झाँकी में, फूलन को शृंगार धराके ।
फूलन के आसन बैठाये, फूले फूले लागें बाँके ।
फूलन सों सजि सब सहचारी, फूली फूल लता सों झाँके ।
लखि लखि कुंदप्रिया अति फूली, फूली फूलसखी गुन गाके ।

आओ सखी, अब फूलों से सजे व फूलों के फव्वारों से शोभायमान इस चौराहे को बायें से पार करते हुए आगे सीधे संध्या कुञ्ज वाले मार्ग से दोनों ओर की फुलवारी में फूलों से निर्मित सुन्दर कृतियों का अवलोकन करती हुई संध्या कुञ्ज चलें।

देखो सखी! अनेक प्रकार की रचनायुक्त सुन्दर फुलवारी के बीच

यह फूलों से निर्मित एक भव्य मण्डल है। देखो, इसके आठों ओर आठ फूलों के बंगलों (महलों) की रचनाएँ कितनी ही मनमोहक लग रही हैं। इस भव्य मण्डल के ऊपर फूलों से निर्मित बारह द्वार का विशाल महल व इस फूलों के महल के बारह द्वारों के दोनों ओर एक द्वार से दूसरे द्वार तक फूलों की लड़ियों से निर्मित जालियाँ (झरोके) बरबस मन को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। इस महल के ठीक बीच में अति सुन्दर अष्टकोण पुष्प शैया देखो। इस पर श्रीप्रिया – प्रियतम विश्राम करते हैं। इस महल के चारों ओर पुष्पों से निर्मित चार जगमोहन (बरामदे) हैं। इनमें पुष्पों से की गई सज्जा बरबस चित्त को चुराए ले रही है।

देखो सखी! इधर आओ, पूर्व के इस बरामदे में विविध रंगों व विविध प्रकार के पुष्पों की एक विशेष झांकी सजाई गई है। फूलों की सज्जा जहाँ पर जैसी होनी चाहिए वैसी ही है। इस सुन्दर झांकी के बीच सुन्दरातिसुन्दर पुष्प सिंहासन को तो देखो। यह अपनी शोभा से झांकी में चार चांद लगा रहा है। इस सिंहासन के सामने पुष्पों से निर्मित यह कितना सुन्दर सभा मण्डप बनाया है। यह तो देखते ही बनता है। सभा मण्डप के बाह्य व अन्तर द्वार के दोनों ओर व आन्तरिक परिसर में पुष्पों की सखियाँ, पुष्पों के ही विविध प्रकार के वीणा, मृदंग आदि वाद्य यन्त्र लेकर यथास्थान विराज रही हैं। सखी, इन पुष्प सखियों को केवल पुष्पों से निर्मित सखियाँ ही न समझो, ये पुष्प सखियाँ श्रीलाड़िली लाल के आदेश पर वाद्यन्त्र बजाकर अपने गायन व नृत्य के द्वारा अनेक प्रकार से मनोरंजन करती हैं। ये सखियाँ श्रीप्रिया – प्रियतम के सभा मण्डप में आते ही क्रियाशील हो अनेक प्रकार से युगल दम्पत्ति को आनन्द प्रदान करती हैं।

चली प्रिया देखन फुलवाई ।

दरस परस रस लेत परस्पर, नागरि नागर जोरि सुहाई ।।
देखि देखि रचना फुलवाई,चकित मुदित मन करत बड़ाई ।
संग सहेली सोहति नीकी, सबन युगल हित सौंज सजाई ।।
बिजना चँवर मोरछल झारी, सुन्दर दर्पण रतन जड़ाई ।

पीकदानि पनडबा सुगंधी, कुंदप्रिया कर छतर धराई ।।

देखो सखी! चारों ओर गुलाब, केवड़ा, खस, आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से छिड़काव होने के कारण व नाना प्रकार के सुरभित पुष्पों के कारण पूरा कुञ्ज सुवासित हो रहा है। पुष्प मण्डल पर बने पुष्प महल के चारों ओर गोल मार्ग के दोनों ओर फव्वारों की इस अनुपम रचना को तो देखो सखी, देखती ही रह जाओगी। देखो सखी! इन फव्वारों से फूलों की वर्षा हो रही है, लेकिन ये देखने भर के लिये ही फूल हैं, वास्तव में ये जल से ही निर्मित हैं। इधर सामने देखो, दो फव्वारों से निकलता जल श्रीप्रिया-प्रियतम की आकृति धारणकर नृत्य कर रहा है। इसको देखने से साक्षात् श्रीयुगल किशोर के होने का भ्रम हो रहा है।

अरी सखी, इधर आओ। देखो, जिधर भी दृष्टि जाती है उधर ही एक-से-एक अद्भुत पुष्पों की कलाकृतियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। मन करता है बस, देखती ही रहूँ। सखी, इसी प्रकार श्रीवृन्दावन में दिन-प्रतिदिन नई-नई कुञ्जें निर्मित होती रहती हैं। सखी, जब श्रीयुगलवर सखियों के साथ वन विहार करते हुए इस फुलवारी में आते हैं तो उस समय श्रीयुगलकिशोर का नख-शिख श्रृंगार पुष्पों का ही होता है। कभी-कभी जब श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों में से कोई भी फुलवारी की इन रचनाओं में छुप जाते हैं तो पुष्पों का श्रृंगार होने से उनको ढूंढना मुश्किल हो जाता है।

चलो सखी, वृन्दावन की इस अनुपम शोभा को निरखते हुए अब संध्या कुञ्ज चलती हैं।

संध्या कुञ्ज

सखी! संध्या हो चली है। सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये हैं। आकाश में बादल छट गये हैं। कहीं-कहीं लाल व पीले बादलों की टुकड़ियाँ दिखाई दे रही हैं। वायु की गति बहुत मन्द पड़ गई है। अब हम संध्या कुञ्ज के आन्तरिक परिसर में प्रवेश कर रही हैं। कुछ-कुछ शीतलता का आभास होने लगा है।

देखो सखी! यह गोलामार्ग व इसके दोनों तरफ सुन्दर नहरें तथा नहरों में खिले विविध रंगों के कमलों पर मंडराते भ्रमर बहुत ही प्यारे लग रहे हैं। मार्ग के दोनों ओर लघु श्रेणी के फलों-फूलों से लदे वृक्ष व उन पर छाई वल्लरियाँ एवं वल्लरियों से बने वितान एक अद्भुत शोभा का विस्तार कर रहे हैं। यह गोलामार्ग इन चारों फूल- क्यारियों को चारों ओर से वृत्ताकार रूप में घेरे हुए है। इस गोलामार्ग की लम्बाई एक चौथाई कोस (पौना कि.मी.) है। रत्नमणि जड़ित इस गोलामार्ग के अन्दर चार विशाल फुलवारियों के ठीक मध्य में संध्या कुञ्ज स्थित है।

संध्या कुञ्ज से उत्तर व ईशान कोण के बीच की तरफ जाने वाला मार्ग मोहन महल जा रहा है। दक्षिण व नैऋत्त कोण के बीच की तरफ जाने वाला यह मार्ग विशद कुञ्ज के ठीक बीच के कोने में जा रहा है। सीधा आगे जाने वाला मार्ग चित्रा सखी वाले मार्ग को पारकर ब्यारू कुञ्ज की तरफ जा रहा है।

आओ सखी! इन सुन्दर चार विशाल फुलवारियों के मध्य पीत व श्वेत मणियों से जड़ित इस विशाल संध्या कुञ्ज के भीतर चलती हैं। संध्या कुञ्ज के भीतर की पाँच सीढ़ियाँ चढ़के व नहर को छोटा सा सेतु पार करके यह विशाल मणि मण्डल आ गया है। इस मणि मण्डल पर स्थित यह संध्या कुञ्ज है। इस विशाल कुञ्ज के चारों तरफ यह सुन्दर मणिमय बरामदा देखो! इसकी शोभा देखते ही बनती है। मणि जड़ित इसके स्तम्भ कितने फब रहे हैं। सखी! क्या कोई इस कुञ्ज का वर्णन कर सकने में समर्थ हो सकती है?

देखो सखी! इस कुञ्ज के भीतर प्रवेश करने के लिये चारों तरफ तीन-तीन द्वार हैं जिनमें स्वर्ण निर्मित व रत्न जड़ित सुन्दर कपाट लगे हैं। द्वार पर मोतियों की लड़ें व पुखराज की झालरें तो मन को बरबस चुराये लिये जा रही हैं।

सखी! देखो, कुञ्ज के मध्य में सुन्दर रत्नमणि जड़ित यह सुन्दर सिंहासन है। वन बिहार करते हुए जब श्रीप्रिया-प्रियतम संध्या कुञ्ज पहुँचते हैं तो इसी सिंहासन पर विराजमान होते हैं। यहीं पर सखियाँ श्रीयुगलवर की सुन्दर रीति से कंचन थाल में मणियों की दीपावली

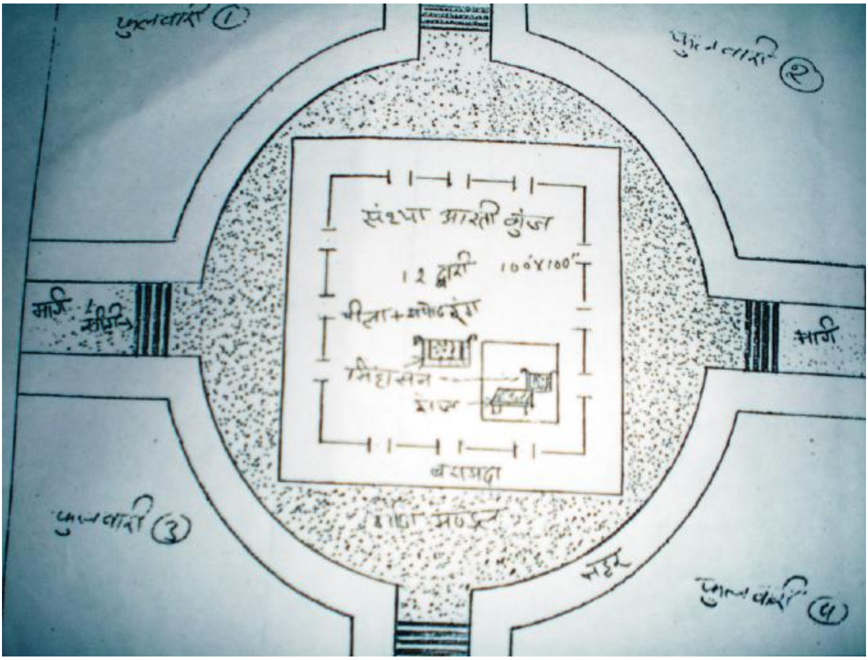

सजाकर संध्या आरती उतारती हैं।

संध्या आरति करि सुख पाऊँ । युगल रसिक मन मोद बढ़ाऊँ ।।
नख सिख सुन्दर सजे युगलवर, रस के भरे नागरि नागर ।
लखि लखि रूप हृदय पधराऊँ, संध्या आरति करि सुख पाऊँ ।।
कनक मणी श्री स्यामा प्यारी, नील मणी घनस्याम बिहारी ।
अद्‌भुत जोरी पै बलि जाऊँ, संध्या आरति करि सुख पाऊँ ।।
नैन रसीले अति कजरारे, मंद हँसन जादू सा डारे ।
निरखि युगल छबि भाग मनाऊँ, संध्या आरति करि सुख पाऊँ ।।
संध्या कुँज की संध्या बेला, संध्या आरति में रस रेला ।
कुंदप्रिया करि नृत्य रिझाऊँ, संध्या आरति करि सुख पाऊँ ।।

श्रीश्यामा-श्याम की इस समय की छबि को बार-बार दर्शन करती हुई सखियाँ बलिहार जाती हैं। उस समय श्रीरसिक दम्पत्ति को अति आनन्दित व प्रेम में पगे जान सखियों के हृदयों में आनन्द की बाढ़-सी आ जाती है।

रंग-रंगीले, छैल-छबीले, रसिक-रसीले श्रीयुगलकिशोर की रसमय सेवा ही सखियों की अभिलाषित वस्तु है। इसलिये आरती के बाद सब सखियाँ श्रीश्यामा जू की स्तुति करती हुई पराभक्ति (सेवा सुख) का वरदान मांगती हैं जिससे उनको सदा सेवा सुख प्राप्त होता रहे। तत्पश्चात् स्वामिनी श्रीकिशोरी जू से पराभक्ति का वरदान प्राप्त कर समस्त सखियाँ श्रीयुगल की रसमय स्तुति करती हैं।

फिर सखियाँ आनन्द व उत्साह से भरकर श्रीयुगल के आनन्द विधान हेतु संगीत गोष्ठी का सुन्दर आयोजन करती हैं। वादन व गायन के साथ-साथ विविध प्रकार के नृत्य कर दोनों का मनोरंजन करती हैं। श्रीप्रिया-लाल इसी सिंहासन पर विराजमान होकर सखियों द्वारा संयोजित अनेक प्रकार के भेदों-प्रभेदों से वादन, गायन व नृत्य का श्रवण व दर्शन करते हुए बीच-बीच में 'वाह! क्या बात है' कह-कहकर सबका आनन्द वर्धन करते रहते हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम का बसन्त बिहार, होली खेलन, जल बिहार, वर्षा ऋतु बिहार, झूला उत्सव, ब्याहुला आदि का अभिनय करती हुई अनेक प्रकार से नृत्य करती हैं। जिसको देख-देखकर श्रीयुगल किशोर व सखियों में हँसी के फव्वारे छूटने लगते हैं। सखियों द्वारा आयोजित रसमयी केलि के अभिनय से दोनों के हृदयों में रस का उद्दीपन होने लगता है।

प्रमदागन मिलि रास रचावैं। नृत्य गान सों युगल रिझावैं।।
मुदित सरस बाजिंत्र बजावैं। होड़ा होड़ी द्रुत गति पावैं।।
पिय प्यारी रस लीला गावैं। सब निज निज गुण प्रकट दिखावैं।।
वेष धर्‌यौ मोहनि अरु मोहन। करि अनुकरन रिझावैं दोउ जन।।
हाव भाव बहु भाँति दिखावैं। आप हँसे अरु युगल हँसावैं।।
नैनन नैन जोरि बतरावैं। रसिक सिरोमनि अति सरसावैं।।
नृत्य गानमयि सखियन लीला। निरखि निरखि मन होत रसीला।।
कुंदप्रिया जै सब्द उचारे। दोउन को हिय लेत हुलारे।।

हे सखी! तत्पश्चात् सखियों की अभिलाषा जानकर श्रीरसिक दम्पत्ति इस रहसि कुञ्ज में रहसि रास करते हैं। इस रस-लीला के दर्शन

कर समस्त सखियाँ श्रीप्रिया–प्रियतम के ऊपर अपना तन मन न्यौछावर करती हुईं आनन्द विभोर हो जाती हैं तथा कृतज्ञतापूर्वक आशीर्वादात्मक गायन करती हुई कहती हैं– 'हे सुख स्वरूप रसिकवर! आप दोनों इसी प्रकार बिहार करते रहो। हम सखियों को सुख देने वाली विलास पारायण, आपकी इस मनोहारी छबि पर हम बार–बार बलिहारी जाती हैं।'

संध्या कुञ्जान्तर्गत रहसि कुञ्ज में रहस्य केलि के उपरान्त श्रीकिशोर–किशोरी शृंगार से सुसज्जित हो रहसि कुञ्ज के इस रत्नमय सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। सखियाँ नख से शिख तक शृंगार से सुसज्जित श्रीयुगल जोड़ी के दर्शन कर नेत्रों के मार्ग से इस मनोहर रूप को अपने–अपने हृदयों में बसा लेती हैं।

हे सखी! इस प्रकार रहसि कुञ्ज की लीला विलसते चार घड़ी (एक घंटा छत्तीस मिनट) रात्रि बीत जाने पर सखियाँ श्रीयुगलवर को ब्यारू कुञ्ज (रात्रि भोजन सदन) के लिये ले चलती हैं।

हे सखी! संध्या कुञ्ज के बाद अब ब्यारू कुञ्ज के लिये चलती हैं जहाँ पर सखी– सहचरियाँ श्रीयुगल दम्पत्ति की ब्यारू (रात्रि भोजन) सेवा करती हैं। सखी! यह ब्यारू कुञ्ज मोहन महल के पश्चिम व नैर्ऋत

कोण के बीच तथा इस संध्या कुञ्ज से वायु कोण में स्थित है। मोहन महल व संध्या कुञ्ज से ब्यारू कुञ्ज एक चौथाई कोस (पौना कि. मी.) की दूरी पर है। यह अष्टमोहिनी कुञ्जों में छठी कुञ्ज है।

अरी सखी! देख रही हो ना, रात्रि होने पर भी इस वृन्दावन में कहीं भी अन्धकार नहीं दिखाई दे रहा है। सखी! जिधर देखो, उधर ही विविध प्रकार व रंग-बिरंगी मणियों की ज्योत्स्ना समस्त श्रीवन में छाई हुई है। यहाँ के कुञ्ज- निकुञ्ज, महल, मार्ग, नहरें व वृक्ष-लताएँ आदि सभी स्वयं प्रकाशमान हैं। देखो सखी! मार्ग के दोनों ओर नहरों में बहता हुआ जल ऐसा दिखाई दे रहा है मानो प्रकाश ही द्रवीभूत होकर बहने लगा हो। प्रकाशमय जल में खिले कमल ऐसे जान पड़ रहे हैं मानो ये भी प्रकाश से ही निर्मित हैं। मार्ग में जड़ी झिलमिल-झिलमिल करती ये मणियाँ कितनी ही प्यारी लग रही हैं। मार्ग के दोनों ओर मणिमय गमले व इनमें लगे मणिमय पुष्पों के मणिमय पौधे अपनी सुन्दर छबि से बरबस मन का हरण किये जा रहे हैं। सखी! यहाँ से आगे जितने भी वृक्ष या लताएँ हैं, सभी मणिमय हैं। देखो, लताओं के तने, शाखाएँ, प्रशाखाएँ, पत्र, पुष्प व फल सभी मणिमय हैं। ये वृक्षावलियाँ व इन पर छाई कल्पलतिकाएँ तो बस देखते ही बन रही हैं। इनके तने नील मणियों के, शाखाएँ मर्कत मणियों की, पत्र पुष्पराग मणियों के व पुष्प सुरंग मणियों के और फल प्रवाल मणियों के अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं।

इधर देखो, सखी! इन वृक्षों के तने स्वर्ण मणियों के, मुख्य शाखा इन्द्र नीलमणियों की तथा उपशाखाएँ स्फटिक मणियों की, पत्र मर्कतमणियों के, कौंपलें पद्मराग मणियों की, पुष्प स्फटिक व प्रवाल आदि मणियों के तथा फल मुक्ता मणि व बज्र मणियों के हैं। सखी इस श्रीवन में भाँति-भाँति के वृक्षों से भाँति-भाँति की लताएँ लिपट रही हैं। कहीं तो स्वर्ण मणि वृक्षों से इन्द्र नीलमणि लताएँ तो कहीं इन्द्र नीलमणि वृक्षों से स्वर्णमणि लताएँ, कहीं वैदुर्यमणि वृक्षों से स्फटिक मणि लताएँ तो कहीं स्फटिक मणि वृक्षों से वैदुर्यमणि लताएँ और कहीं चन्द्रकांत मणि वृक्षों से मर्कत मणि लताएँ लिपटी हुई हैं। सखी! जिधर भी देखो, कितने प्रकार के मणिमय वृक्षों पर कितनी प्रकार की मणिमय लताएँ बल खातीं

एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर छा रही हैं। देखो, कितने सुन्दर- सुन्दर वितान बन रहे हैं।

देखो सखी! जहाँ इन्द्र नीलमणियों की भूमि है वहाँ स्वर्ण मणियों के वृक्ष हैं और जहाँ स्फटिक मणियों की भूमि है वहाँ प्रवाल आदि लाल मणियों के वृक्ष हैं। जहाँ स्वर्ण मणियों की भूमि है वहाँ स्फटिक मणियों के वृक्ष हैं। कहीं लाल मणियों की भूमि तो कहीं मर्कत मणियों की, कहीं इन्द्र नीलमणियों के वृक्ष तो कहीं पद्मराग मणि के। सखी! जिधर देखो, उधर ही श्रीवनराज अपनी सम्पदा मुक्त हस्त से बांट रहा है। मन करता है वृन्दावन की इस अद्भुत छटा को तो बस देखते ही रहें।

सखी! देखो, सामने यह चौराहा आ गया। इस चौराहे के बीच मणि मण्डल पर कितने मनोहारी प्रकाश कणों के फव्वारे छूट रहे हैं। इनमें से छूटती ये प्रकाशमय सितारों की फुव्वार तुम्हारे ऊपर पड़ने लगी है। देखो, तुम्हारे वस्त्रों में चिपके ये रंग-बिरंगे प्रकाश कण कितने सुन्दर लग रहे हैं। तुम्हारी नील चुनरी पर पड़े ये प्रकाश कण ऐसे लग रहे हैं मानो नीला आकाश तारों सहित आकर तुमसे लिपट गया हो। तुम्हारा मुख ही मानो चन्द्रमा है। सखी! मध्य वाले इस मुख्य फव्वारे को देखो, इसमें से विविध प्रकार व विविध रंगों की मणियों के फव्वारे छूट रहे हैं। रंग- बिरंगी मणियाँ िसे छूटकर उछलती- लुढ़कती हुई नहरों में गिर रही है। मणियों के गिरने फिर उछलकर लुढ़कने व नहर में गिरने से जो शब्द होता है इससे एक अद्भुत संगीत का सृजन हो रहा है, जो कर्णपुटों में अमृत उड़ेल रहा है।

सखी! हमारी दायीं ओर का यह मार्ग मोहन महल व बायीं ओर वाला यह मार्ग अष्टद्वारी महल के नैऋत कोण वाले द्वार से होता हुआ श्रीचित्रा जी की **पद्म किंजलक** नामक कुञ्ज को पार करके श्रीजमुना जी के चित्रक घाट पर जा रहा है और ये सामने सीधा ब्यारू कुञ्ज के लिये जा रहा है। आओ सखी! अब हम इस चौराहे को दायें करके सीधे ब्यारू कुञ्ज के लिये चलती हैं।

ब्यारू कुञ्ज

सखी! अब हम ब्यारू कुञ्ज की वाटिका के बाह्य परिसर में प्रवेश कर रही हैं। सखी! देखो, ऊपर आकाश की तरफ। रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े तारों की झिलमिल ऐसी लग रही है मानो एक बहुत बड़े थाल में अनेक प्रकार व अनेक रंगों की मणियाँ विशेष रीति से सजाई गयी हों। सखी! ध्यान से देखो, तारों से बनी विविध प्रकार की आकृतियाँ क्या ऐसी नहीं लग रही हैं मानो जैसे झिलमिल करते इस वृन्दावन का प्रतिबिम्ब आकाश में पड़ रहा हो? चन्द्रमा व उसमें नीली-काली छाया क्या ऐसी नहीं लग रही है मानो तप्तकाञ्चन गौरांगी श्री किशोरी जी का मुख चन्द्रमा हो और उनके कजरारे नेत्रों में श्याम छबि बसी हो? सखी! शरद ऋतु में यह कुञ्ज वन कितना सुहावना लग रहा है, वायु बिल्कुल शांत हो गई है। सहज ही शीतलता का सुखद स्पर्श हृदय में नवीन उत्साह भर रहा है।

सखी! अब हम ब्यारू कुञ्ज की फुलवारी के आन्तरिक परिसर में प्रवेश कर रही हैं। देखो, मणिमय पुष्पों की ये सुन्दर फुलवारी। इन लताओं को देखो, इनमें गुच्छे-के-गुच्छे मणिमय पुष्प व फल लटक रहे हैं। शाखाएँ-उपशाखाएँ व पत्र, फूल-फल सब कुछ मणिमय ही है। इस फुलवारी का सीमातीत सौन्दर्य तो देखो। झिलमिल करते इनके पत्र, पुष्प व फल अपनी शोभा से वृन्दवन में सौन्दर्य का विस्तार कर रहे हैं। यत्र, तत्र, सर्वत्र प्रकाश कणों के फव्वारों का तो बस कहना ही क्या।

सखी! ये सामने मणि मण्डल पर स्थित विशाल मणिमय ब्यारू कुञ्ज है। इसके चारों ओर गोलाकार नहर व नहर के चारों ओर यह मणि जड़ित गोलामार्ग है। इस कुञ्ज से ईशान कोण व पूर्व दिशा के बीच मोहन महल पड़ता है। मोहन महल के विपरीत दिशा में जाने वाला यह मार्ग विचित्र कुञ्ज की तरफ जा रहा है और आगे ब्यारू कुञ्ज को पार करके सीधा मार्ग शयन कुञ्ज की तरफ जा रहा है।

सखी! यह ब्यारू कुञ्ज बाहर से तो विविध प्रकार की मणियों से सुसज्जित दिखाई दे रही है लेकिन ये भीतर से केवल जामुनी रंग की विविध प्रकार की मणियों से जड़ित है। यह कुञ्ज बारह द्वारी है। इसके

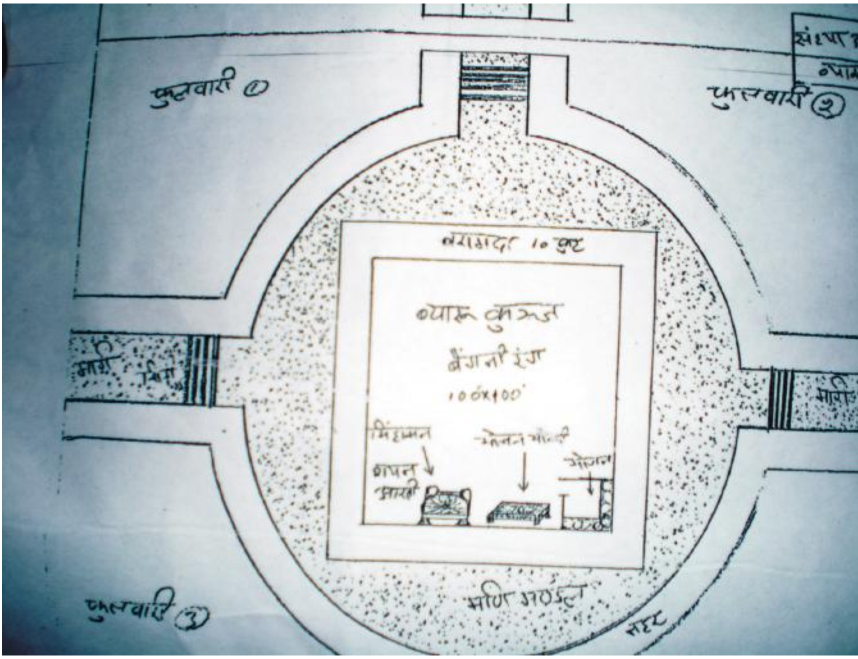

चारों ओर यह सुन्दर बरामदा है। आओ, हम मणिमण्डल पर चढ़कर कुञ्ज के भीतर चलती हैं।

देखवो सखी! मणि जड़ित इस चौंकी पर ब्यारू (रात्रि भोजन) आरोगने के लिये श्रीयुगलवर एक दूसरे की तरफ मुख करके सुख पूर्वक आसीन होते हैं। तब सेवापरायण सखियाँ दोनों के बीच भोजन से सुसज्जित कञ्चन थाल परस देती हैं। फिर प्राण-प्रियतम अपनी प्राणवल्लभा प्यारी जू के साथ ब्यारू करते हैं। तब दोनों परस्पर ग्रास

ले- लेकर मनुहारपूर्वक एक दूसरे के मुख में अर्पण करते हैं। तब स्पर्श

सुख से दोनों के हृदयों में रस का संचार होने लगता है तथा अंग-प्रत्यंग रोमांचित हो उठते हैं। फिर दोनों को सखियाँ मिश्री मिला हुआ दुग्ध स्वर्ण कटोरों में भर-भरकर पान कराती हैं। इस प्रकार रुचि पूर्वक विविध प्रकार के पकवान व दुग्ध आरोगने के बाद आचमन कराती हैं। तत्पश्चात् दोनों के हस्त कमलों में सुगन्धित बीरी (ताम्बूल) देती हैं। फिर दोनों के मन की अभिलाषा जानकर, दोनों को इस सिंहासन पर सुख पूर्वक विराजमान करके स्वर्णथाल में जगमगाती मणियों की दीपावली से शयन आरती उतारती हैं।

सैन आरती वारति अलियाँ। नाचति गावति सब मिल रलियाँ।।
दोउ विराजैं रतन सिँहासन, अंग अंग सोहैं आभूषन।
गल में दुलरी माला कलियाँ, सैन आरती वारति अलियाँ।।
अरसाये नैना अति प्यारे, नींद भरे बिच झपकी मारे।
मृदु बोलनि मनु मिसरी डलियाँ, सैन आरती वारति अलियाँ।।
कंचन थार मणिन के दियरा, करति आरती वारति हियरा।
सब सखि एकहिं साँचें ढलियाँ, सैन आरती वारति अलियाँ।।
दोउन पै डारैं तृन तोरी, कुन्दप्रिया रस बोरी जोरी।
भरि भरि वारैं पुष्पाँजलियाँ, सैन आरती वारति अलियाँ।।

उस समय सभी सखी-सहचरियाँ अपने हृदयों में श्रीयुगलवर की मंगल कामना करती हुई बार-बार बलैया लेती हैं। इसके बाद सखियाँ श्रीप्रिया-लाल को शयन कुञ्ज में शयन के लिये ले जाती हैं।

हे सखी! आओ अब शयन कुञ्ज के लिये चलती हैं।

हे सखी! मणिमय पथ पर चलते-चलते व श्रीवृन्दावन के असीम सौन्दर्य का अवलोकन करते हम कब इस चौराहे पर पहुँच गई पता ही नहीं चला। देखो सखी! हमारे दायीं ओर ये मार्ग मोहन महल और बायीं ओर तुंगविद्या की **आनन्ददा** नाम कुंज होता हुआ यमुना जी की ओर जा रहा है। अब हम इस चौराहे को पार करके वृन्दावन की दिव्य छटा को निहारते हुए सीधा शयन कुंज की ओर चलती हैं।

शयन कुञ्ज

हे सखी! मणिमण्डल पर स्थित पुष्पराग मणियों से निर्मित यह शयन कुञ्ज है जिसमें श्री श्यामाश्याम शयन करते हैं। इस बारहद्वारी शयन कुञ्ज के चारों ओर यह अति सुन्दर जगमोहन (बरामदा) जगमगा रहा है। यह सम्पूर्ण कुञ्ज झिलमिल करती हुई बहुत ही सुहावनी लग रही है। सखी आओ, अब इसके भीतर चलते हैं।

देखो सखी! इस कुञ्ज के बारह द्वारों पर स्वर्ण तारों की चिक व उसमें लगी मंद-मंद प्रकाश बिखेरती मणियाँ कितनी फब रही हैं। द्वार पर लगी मणियों की बंदनवार व भीतर दिवारों पर लटकी मोतियों की झालरें कुञ्ज की शोभा में चार चाँद लगा रही हैं। कुञ्ज के भीतर मणियों के मंद-मंद प्रकाश से न तो पूर्ण अंधकार ही है और न ही पूर्ण प्रकाश। कुञ्ज के ठीक बीच में मणिमय ये सर्वतोभद्रनी शैया है जो पचरंगी रेशमी धागों से बनी है। इसके ऊपर यह सुन्दर नवरंगी बिछान बिछी है। सुन्दर शैया के सिरहाने की ओर ये गोल व चकोर अति कोमल तकिये हैं। इस शैया पर अलक लड़ैते युगलवर शयन करते हैं। कुञ्ज के भीतर नाना प्रकार व आकार की मणियाँ सभी हल्के पीत वर्ण की हैं।

इस कुञ्ज के चारों ओर की फुलवारी में कहीं भी पक्षियों का कलरव सुनाई नहीं देता। सभी शांत बैठे हुए हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम की सुरत केलि का चिंतन करते हुए रस में डूबे हुए हैं। सखी, इस कुञ्ज व आसपास की समस्त फुलवारी में यद्यपि हेमन्त ऋतु का राज्य है फिर भी यहाँ अधिक ठंड का आभास नहीं होता। जानती हो क्यों? क्योंकि इस कुञ्ज की समस्त मणियाँ कुछ ऊष्णता लिये होती हैं। इसलिये यहाँ का वातावरण हमेशा सम रहता है।

सखी! यह शयन कुञ्ज मोहन महल से एक चौथाई कोस (पौना कि०मी०) की दूरी पर पश्चिम व वायव्य कोण के बीच पड़ती है। यह अष्टमोहिनी कुञ्जों में सातवीं कुञ्ज है। शयन कुञ्ज के एक ओर मोहन महल तो दूसरी ओर विपरीत दिशा में अष्टद्वारी महल की '**अमित कला**' कुञ्ज पड़ती है। सखी! जब हमारे प्राणों के नाथ श्रीप्रिया-प्रियतम इस

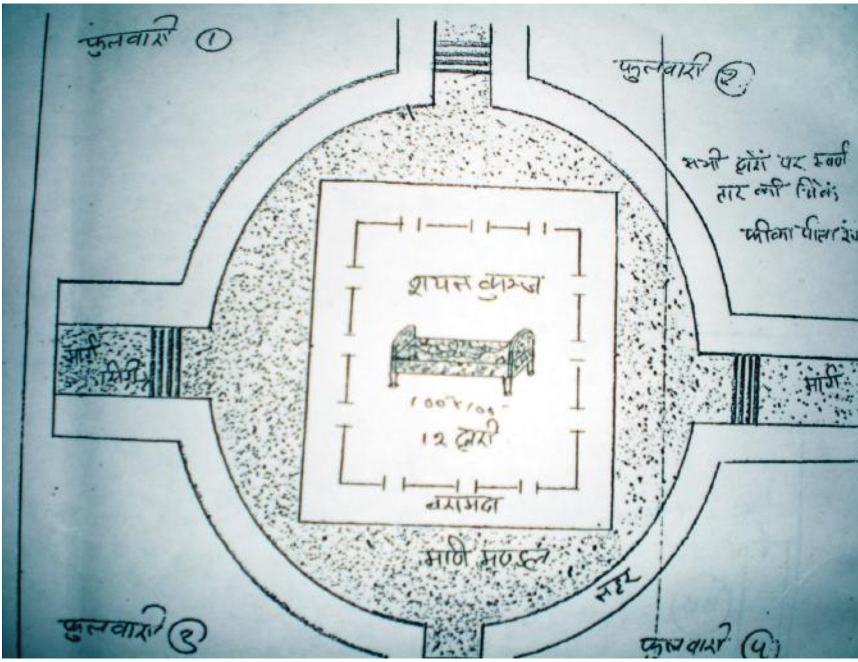

शयन कुञ्ज में विश्राम करते हैं तो हम सखियाँ कुञ्ज के झरोखों से शयन करते हुए अपने हृदयधन को नैनों के द्वार से अपने हृदय में बसा लेती हैं। इनकी रस लीला का गुणगान करती हुई अपने हृदयों में आनन्द का वर्धन करती हैं और बार-बार इस जोड़ी पर बलिहार जाती हैं।

उस समय हमें जो सुख प्राप्त होता है उसको केवल हम ही जानती हैं, दूसरा कोई नहीं जान सकता। उस समय हम सखियों को यही लगता है कि हमारे समान भाग्यशालिनी दूसरी कोई नहीं है। हम अपने भाग्य की सराहना करती हुई यही कहती हैं कि हमारे समान तो केवल हम ही हैं, दूसरा कोई नहीं।

शयन कुञ्ज के बाद आठवीं कुञ्ज '**ब्याहुला कुञ्ज**' है। आओ, अब ब्याहुल कुञ्ज चलती हैं जहाँ समस्त सखी सहेलियाँ विशेष उत्साह के साथ रसिक सिरमौर युगल सरकार का विवाह उत्सव मनाती हैं और दुल्हा-दुल्हिन के रूप में दर्शनकर अपना तन-मन न्यौछावर करती हैं।

हे सखी! रसमय धाम श्रीवृन्दावन की शोभा श्री का क्या कोई

वर्णन कर सकता है? इसकी शोभा तो बस देखते ही बनती है।

देखो सखी! विभिन्न प्रकार की मणियों से अलंकृत व विभिन्न प्रकार की चित्र-विचित्र आकृतियों से सुसज्जित यह चौराहा कितना फब रहा है।

देखो! इस चौराहे से यह दायीं ओर का मार्ग मोहन महल व बायीं ओर का मार्ग इंदुलेखा सखी की **पूर्णेन्दु** नामक कुंज से होता हुआ यमुना जी की ओर जा रहा है। आओ, अब हम ब्याहुला कुंज के लिये चलते हैं।

ब्याहुला कुञ्ज

सखी! देखो सामने विविध प्रकार की व विविध रंगों की फुलवारी के बीच यह जगमगाती विशाल 'ब्याहुला कुञ्ज' है। मणिमण्डल पर स्थित बहुरंगी मणियों से निर्मित यह विशाल कुञ्ज की शोभा तो बस देखते ही बनती है। सखी! इस कुञ्ज व फुलवारी की शोभा देखकर तुमको ऐसा लग रहा होगा कि इससे अधिक सौन्दर्य व माधुर्य ओर नहीं हो सकता। यह तो सौन्दर्य की सीमा है लेकिन सखी जब हमारे प्राणवल्लभ श्रीयुगल किशोर का इस ब्याहुला कुञ्ज में विवाह उत्सव मनाया जाता है तो उस समय की शोभा को तो कोई पूर्ण रूप से देख ही नहीं सकती क्योंकि जहाँ दृष्टि पड़ती है बस वहीं स्थिर हो जाती है हटने का नाम ही नहीं लेती।

अब तुम ऐसा कदापि नहीं समझना कि इससे अधिक शोभा हो ही नहीं सकती। सखी! हमारी जीवन सर्वस्व सर्वेश्वरी श्रीकिशोरी जू का यह निज धाम श्रीवृन्दावन है जो प्रत्येक क्षण श्रीप्रिया-प्रियतम के सुखार्थ लीला सम्पादन के लिये नित्य नया रूप धारण करता रहता है। जब श्रीलाड़िली-लाल का विवाह उत्सव होता है तो उस समय समस्त कुञ्ज में हलचल मच जाती है। यहाँ का कण-कण सौन्दर्य और माधुर्य से जगमगा उठता है। समस्त सखी परिकर विवाह उत्सव की तैयारी में जुट जाता है। सखियाँ भव्य विवाहोत्सव पर मंगल गीत गाने लगती हैं। एक-से-एक बढ़कर दिव्यातिदिव्य प्रभामयी कुञ्जों का निर्माण होता है। महल के सुन्दर मणिमय आंगन को सुन्दर रीति से सुसज्जित कर मोतियों

व विविध प्रकार के रत्नों से सुन्दर–सुन्दर चौक पूरे जाते हैं। द्वार–द्वार पर आम्रपल्लव व मणियों के बंदनवार बाँधे जाते हैं। द्वारों के दोनों ओर हलदी व कुमकुम के स्वस्तिक बनाकर उसमें स्वर्ण की सीकें लगाई जाती हैं। समस्त द्वारों के दोनों ओर कदली स्तम्भ व मांगलिक द्रव्यों से भरे स्वर्ण कलश स्थापित किये जाते हैं। स्थान–स्थान पर चावल के ढेरों पर सुपारी रखकर विधिपूर्वक सुन्दर स्वर्ण कलश स्थापित किये जाते हैं। कलशों पर पंच पल्लव रखकर उनके ऊपर सुन्दर नारियल रखे जाते हैं। कुञ्ज के शिखरों व मार्ग के दोनों ओर तथा आंगन के चारों ओर रंग–बिरंगी ध्वजा–पताकाएँ लगाई जाती हैं। मार्गों के दोनों ओर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर फलदार कदली वृक्ष रोपे जाते हैं। स्थान–स्थान पर सुन्दर जरीदार वस्त्रों के वितान ताने जाते हैं। सुन्दर वितान के चारों ओर मणिमय पुष्पों की घनी लड़ियाँ लटकाकर प्राचीर बनाई जाती है। सभी स्थलों पर केसर, कस्तूरी, कपूर व चन्दन से बने हुए सुगन्धित द्रव्य का छिड़काव किया जाता है। मणिमय पुष्प मालाओं से समस्त कुञ्ज सजाई जाती है। विवाह मण्डप की विशेष सज्जा होती है। पवित्र सुगन्धित और मंगल जल से भरे सुन्दर कलश मण्डप के चारों ओर सजाकर रखे जाते हैं। उन पर आम्रपत्तों सहित नारियल पधराये जाते हैं। सुन्दर विवाह मण्डप के चारों ओर माणिक, विद्रुम, मुक्ता, मर्कत, पुष्पराज, बज्र, इन्द्रनील, तुषार, सूत्र आदि मणियों की झालरें विशेष रीति से लगाई जाती हैं।

सखी ब्याहुला कुंज सजाई। यथा थली सब सौंज धराई॥
सजि बैठे दोउ दुलहा दुलहन। मौरी मौर हरण सबकौ मन॥
मण्डप सोभा कही न जाये। मनु मनसिज निज करन सजाये॥
प्रथम सखिन वेदी पुजवाई। रीत कीन पूरी मनभाई॥
इँदुलेखा कीनी गठजोरी। भाँवरि लेत किसोर किसोरी॥
नाचहिं गावहिं ताल बजावहिं। अलिगण मनहर भाव दिखावहिं॥
सोइ करहिं जो युगलहि भावै। रस सागर उमड़्यो सो आवै॥
सिंहासन राजहिं नव दम्पति। कुंदप्रिया बलि लखि सुख सम्पति॥

हे सखी! उस समय सभी सखियों में रसिक दम्पति के विवाह

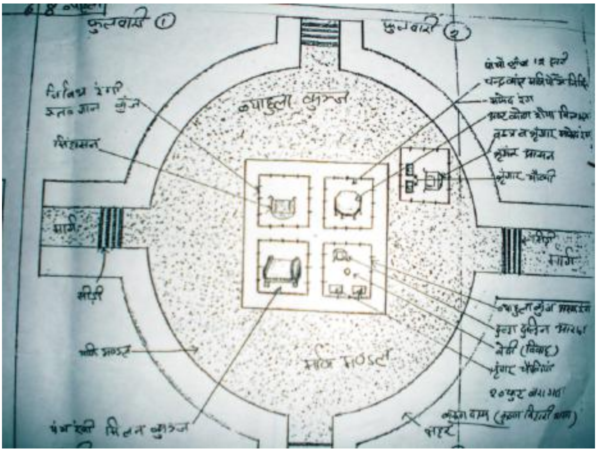

उत्सव का बहुत ही चाव चढ़ा रहता है। सखी! कहाँ तक वर्णन करूँ, वर्णन करते -करते बुद्धि भी बौरा जाती है।

प्यारी सखी! यह ब्याहुला कुञ्ज पांच कुञ्जों में बटी हुई हैं। पांचों कुञ्जें बारह द्वारी हैं। प्रथम कुञ्ज में श्रीप्रिया-प्रियतम को सखियाँ श्वेत परिधान पहनाकर मुक्तामणि, बज्रमणि व स्फटिक मणियों का शृंगार कराती हैं। ब्याहुला कुञ्ज का यह भाग चन्द्रकांत मणियों से निर्मित है। दूसरी कुञ्ज भी चन्द्रकांत मणियों से ही निर्मित है। इस कुञ्ज में विवाह से पूर्व दोनों छैल-छबीले रहस्य रास नृत्य करते हैं। तीसरी अरुण रंग की कुञ्ज है जिसमें श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों को सखियाँ दूल्हा-दूल्हिन के रूप में

श्रृंगार करके विवाह सम्पन्न कराती हैं। पंचरंगी मणियों से निर्मित चौथी कुञ्ज में रहसि रास करते हैं। फिर ब्याहुला कुञ्ज की बहुरंगी स्तवगान कुञ्ज में दोनों युगल दम्पति को सखियाँ सिंहासन पर विराजमान कर प्रसन्नता पूर्वक स्तव गान करती हुई आनन्द में डूबने लगती हैं। तब श्रीप्रियालाल सखियों को अपने-अपने कर कमलों से अपनी प्रसादी वस्तुएँ देकर सबका मान करते हैं। इसके बाद ब्याहुला कुञ्ज से रात्रि बारह बजे सखियाँ अपने हृदयधन श्रीयुगल किशोर को लेकर मोहन महल की सुन्दर शैया पर शयन के लिये पौढ़ा देती हैं।

पौढ़े सैया युगलबिहारी ।
कोमल सेज सजी मणि फूलन, चरचि सुगंध अनेक प्रकारी ।।
इत उत कञ्चन मणि चौकी पै, पीकदानि पनडबा रू झारी ।
कनक कटोरन दूध पिवायो, दोउन को करि करि मनुहारी ।।
नींद भरे नैना अरसाये, लेत जँभाई बारम्बारी ।
करि दुलार पौढ़ाये दोऊ, होले पग चाँपत सखि प्यारी ।।
जानि सुप्त सब बाहर आईं, रंध्र जाल निरखति सहचारी ।
कुंदप्रिया हिय धारि लाल दोउ, डोरि खोलि द्वारे चिक डारी ।।

x x x

नींद सखी! बड़भाग तिहारे ।
कौतुक केलि किलोल रास तजि, तुम सों नेह कियो दोउ प्यारे ।।
सैन समै रसऐन नैन में, कियो वास अति सुख विस्तारे ।
पिय प्यारी पै वार अपुनपो, करि दुलार हरिये श्रम सारे ।।
सखियन के अति लाड़ लड़ीले, सेवा सुख तोहि देन पधारे ।
कुंदप्रिया करियो मनभायो, जो कछु लाड़ चाव चित धारे ।।

राधा कृष्ण परिवार की ओर से प्रकाशित **सेवा सुख** मासिक पत्रिका के माध्यम से **सुन सखी प्रेम नगर की बात** नामक लेखों को पढ़कर निकुंज उपासकों को निकुंज उपासना में बहुत सहयोग मिला, यह हम सभी के लिये सौभाग्य की बात है।

वृन्दावन की योगपीठ का जैसा इन लेखों में वर्णन हुआ है यह केवल वैसा ही नहीं है। वृन्दावन तो नित्य नवीन है, इसका सौन्दर्य व माधुर्य प्रतिक्षण वर्धमान रहता है। निकुंज का सौन्दर्य, माधुर्य, रूप, रंग व आकार सभी कुछ नित्य नवीन है। नित्य धाम निकुंज वृन्दावन को किसी भी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। इन लेखों के माध्यम से केवल संकेत मात्र का ही दिग्दर्शन कराया गया है जिसका आधार लेकर हम आकृति स्वरूप श्रीवृन्दावन को कुछ अंश में हृदयंगम कर सकें।

इन लेखों में अभी तक केवल मोहन महल सहित अष्ट मोहिनी कुंजों का ही वर्णन हुआ है, सो भी कुछ अंश में। इन आठों कुंजों (मंगल, स्नान, शृंगार, राजभोग, संध्या, ब्यारू, शयन व ब्याहुला कुंज) में नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधा रानी एवं नित्य निकुंजेश्वर श्रीकृष्ण की अष्टकालीन सेवा कायव्यूह स्वरूपा सखियों के द्वारा सम्पादित होती है।

जैसा कि आपने पढ़ा होगा, यह अष्टयाम सेवा की आठों मोहिनी कुंजें अष्टद्वारी महल के भीतर व मोहन महल के चारों ओर आठों दिशाओं में स्थित हैं। आठों कुंजों के चारों ओर अष्टभुजाकार (अष्टकोण किलानुमा) यह अष्टद्वारी महल है जो स्फटिक मणियों से निर्मित है। बन बिहार के समय सखियाँ युगल दम्पत्ति को इसी महल की अभियन्तर कुंजों में भाँति-भाँति से लाड़ लड़ाती हैं। अष्टभुजी अष्टद्वारी महल की प्रत्येक भुजा के बीच सुन्दर द्वार बने हैं जिनमें मणि जड़ित स्वर्ण कपाट लगे हैं।

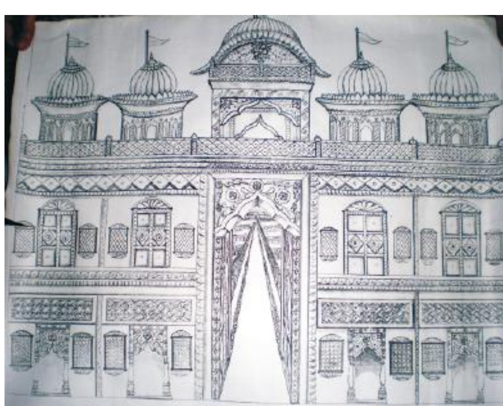

अष्टद्वारी महल के आठ द्वारों में से एक द्वार

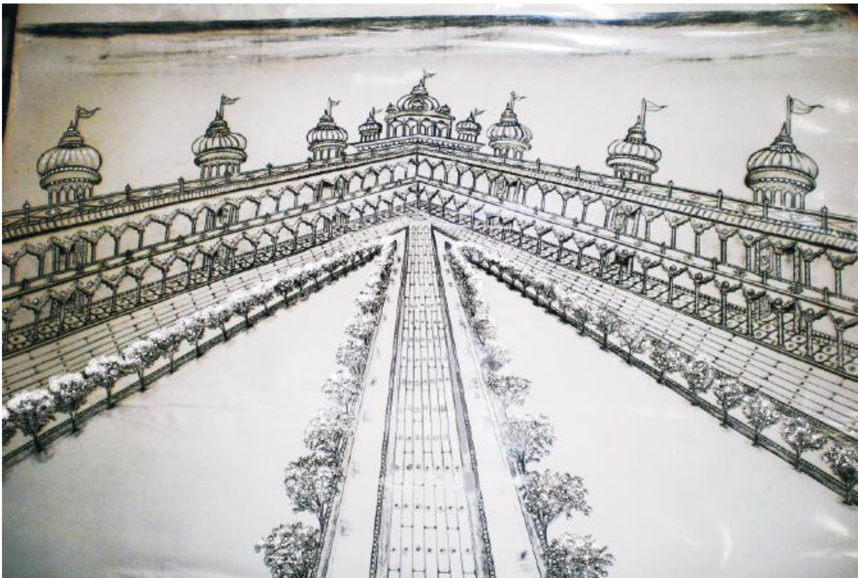

अष्टद्वारी महल का एक कोना

अष्ट द्वारी महल के एक द्वार से दूसरे द्वार के बीच स्फटिक मणियों से निर्मित आठ कुंजें हैं जिनके नाम रंगद, रसद, रहसि, वसुदा, विशद, विचित्र, अमिल कला, अमृत हैं। यही आठ कुंजें परस्पर मिलकर अष्टद्वारी महल कहलाती हैं। किलानुमा अष्टद्वारी महल का घेरा चार कोस (12 कि०मी०) का है। प्रत्येक कुंज की लम्बाई आधा कोस (डेढ़ कि०मी०) की है। इन बारह लेखों में अभी तक जो वर्णन हुआ है वह अष्टद्वारी महल के भीतरी भाग का ही हुआ है।

इन लेखों में एक ही बात को कई-कई बार दोहराया गया है। इससे पुनरोक्ति दोष अवश्य आ गया है लेकिन यह इसलिये किया गया जिससे साधकों को समझने में कठिनाई न हो थोड़ा सा ध्यान देने पर समझ में आ जाए।

निकुंज उपासना में दो साधनों की मुख्यता होती है-**निरंतर नाम जप व चिंतन**। चिंतन में भगवान् के रूप, लीलाओं व सेवा की ही प्रधानता होती है। ये निकुंज लीलाएँ जहाँ सम्पादन होती हैं वह स्थल है निकुंज वृन्दावन। श्रीवृन्दावन धाम सर्वेश्वर श्रीकृष्ण व इनकी स्वरूपभूता

अह्लादिनी शक्ति श्रीराधा रानी का क्रीड़ा स्थल है, इनका निज घर है। अतः यहाँ सखी परिकर के सिवा किसी का भी प्रवेश नहीं है। इसलिये भाई श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने श्रीराधा रानी से प्रार्थना करते हुए कहा है कि –

शुचितम दिव्य तुम्हारा दुर्लभ यह चिन्मय रसमय दरबार
ऋषि मुनि ज्ञानी योगी का भी नहीं जहाँ प्रवेश अधिकार

सखी भाव देह धारण करके ही जीव इस प्रेम राज्य में प्रवेश कर सकता है। इसलिये महावाणीकार श्री निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री हरिव्यास देवाचार्य जी महाराज कहते हैं –

प्रात काल ही ऊठि के धारि सखी कौ भाव
जाय मिलै निज रूप सों याकौ यहै उपाव

इसलिये साधक रसिक सम्पद्राय में शरणागत होकर श्रीसद्गुरूदेव प्रदत्त सखी भाव धारण करके सर्वप्रथम आकृति स्वरूप श्रीवृन्दावन का चिंतन करे। श्रीवृन्दावन को हृदयंगम किये बिना साधक निकुंज लीलाओं का ठीक प्रकार से रसास्वादन नहीं कर पाता। श्रीवृन्दावन का चिंतन ही साधक के हृदय में निकुंज लीलाओं के प्राकट्य की भूमिका तैयार करता है। लीला के योग्य हृदय तब बनता है जब यह श्रीवृन्दावन का चिंतन करते – करते तदाकार हो जाता है।

मेरा तन और मन बन गया वृन्दावन
दिल के आसन पर बैठे हैं राधारमन
राधा नाचे कृष्ण नाचे नाचे गोपी जन
मन मेरा बन गया सखीरी पावन वृन्दावन

श्रीवृन्दावन धाम की क्या महिमा है, यह कैसा है, इसका स्वरूप क्या है? यह सब कुछ अंश में समझाने का एक छोटा सा प्रयास था इन लेखों के माध्यम से।

निकुंज रसोपासक साधक को आकृति स्वरूप श्रीधाम वृन्दावन की योगपीठ का चिंतन करने में सुविधा हो, लेखों को लिखते समय यह भाव तो मन में था ही इससे भी प्रबल भाव यह था कि मुझे साधकों को

समझाने में अधिक समय न लगाना पड़े। एक बार का लिखा हुआ हमेशा के लिये साधकों के काम आता रहेगा। इस बहाने से अपना भी चिंतन तो हुआ ही। यह मेरे लिये परम लाभ की बात हुई। दूसरों को मैंहदी लगानेवाले के हाथ में भी स्वाभाविक ही मैंहदी का रंग तो चढ़ ही जाता है। इन बारह लेखों के रूप में **सुन सखि प्रेम नगर की बात** का यह पूर्वार्ध भाग है। इसका उत्तरार्ध प्रकाशित होना अभी बाकी है। प्रभु इच्छा हुई तो भविष्य में कभी प्रकाशित होगा। इसके लिये आपके साथ-साथ मुझे भी प्रतीक्षा है। प्रभु कब कृपा करेंगे।

चल मन श्रीवृन्दावन माहीं ।
जा मधि मोहन महल सुसोभित, कल्पतरू की छाहीं ।।
अष्टमोहिनी कुञ्ज सखी जन, सेवा सुख विलसाहीं ।
अष्टद्वार को महल मनोहर, जाकी पटतर नाहीं ।।
ताके चहुँ दिसि चार सरोवर, सोभा हृदय लुभाहीं ।
ता आगे चहुँ ओर सखिन की, कुञ्ज प्रेम सरसाहीं ।।
रहसि कुञ्ज में ठौर ठौर पिय, प्यारी रस बरसाहीं ।
दिन प्रतिदिन नव नव महोत्सव, करत खेल सुख पाहीं ।।
अष्ट ह्रदनियाँ वन सुखकारी, देखत नैंन सिराहीं ।
निर्मल जल परिपूरित यमुना, घाट घाट टकराहीं ।।
खेलत नित्य जहाँ दोउ प्यारे, लखि सत काम लजाहीं ।
करुण दास वनराज छटा पै, बारबार बलि जाहीं ।।

पराभक्ति (भगवत्प्रेम) प्राप्ति का उपाय

साधन करि नाकादि फल नस्वर पावत जोय ।
एक कृपा ही करि कछू सिद्धि होय सो होय ।।

श्री निम्बार्कपीठाधीश्वर श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी महावाणी सिद्धान्त सुख के पद संख्या तीस में कहते हैं– केवल कृपा से ही प्रेमाभक्ति व निकुंज वृन्दावन प्राप्त कर सकते हैं। भक्ति विहीन साधना (शुभ कर्म) से स्वर्ग आदि नश्वर लोकों की प्राप्ति तो हो सकती है लेकिन अविनाशी निकुंज रस की प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीहरिप्रिया परम पद चाहैं तो या बिना न आन उमाहैं ।

यदि श्रीप्रिया प्रियतम के चरण कमल की कामना है तो एकमात्र इन्हीं की कृपा को छोड़कर दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

शुभ से शुभ कर्म भी भक्ति में विक्षेप है। वैराग्य से भक्ति रस सूख ही जाता है और ज्ञान (अहं ब्रह्मास्मि भाव) तो भक्ति को ही नष्ट कर देता है।

कर्म्मं विक्षेपकं तस्या वैराग्यं रस शोषणं ।
ज्ञानं हानिकरं तत्तत्छोधितं त्वनुयाति तां ।।

जब यह भगवत्प्रेम (पराभक्ति) कृपा साध्य है, साधन साध्य बिल्कुल भी नहीं है तो क्या कोई साधना न करें? कोई शुभ कर्म न करें? इसका उत्तर है– तन, मन द्वारा प्रभु की प्रसन्नता के लिये जो भी किया जाये वो सब भक्ति है। इन कर्मों की गणना कर्म के अन्तर्गत नहीं आती। जो कर्म भगवान् की प्रसन्नता के लिये किया जाए वो भक्ति कहलाता है। पराभक्ति की प्राप्ति के लिये भक्ति का ही आश्रय लेना है, भक्ति विहीन साधना अर्थात् कर्म का आश्रय नहीं लेना।

पराभक्ति प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम भूमिका तैयार करें, वो इस प्रकार है– पहले अन्य आश्रयों का त्याग कर केवल प्रभु का ही आश्रय ग्रहण करें। विधि–निषेधात्मक समस्त धर्मों (कर्मों) का त्याग कर निष्काम भाव से भगवान् के लिये ही भगवद् सेवा भाव से कर्म करें। झूठ, क्रोध, निन्दा का त्याग करें। प्रभु प्रशाद के सिवा कुछ भी ग्रहण न करें।

सब जीवों पर करुणा भाव रखें। किसी के प्रति भी कठोर शब्दों का प्रयोग न करें। श्रीप्रिया प्रियतम की मधुर लीलाओं के रस में ही मन डुबोये रखें। एक पल का समय वृथा न खोयें। सद्गुरु से शिक्षा – दीक्षा ग्रहण कर उन्हीं के अनुसार जीवन बनायें। भगवान् और गुरु में भेद – बुद्धि न करें।

आचार्य श्री का कथन है कि इन बारह लक्ष्णों को हृदय में धारण करने से साधक भगवद्कृपा प्राप्त करने के लिये अधिकारी बन जाता है।

आचार्य श्री ने पराभक्ति की भूमिका तैयार होने के बाद पराभक्ति की दस सीढ़ियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं –

1. रसिक महापुरुषों की सेवा करना।

2. सेवा द्वारा उनकी दया प्राप्त करना।

3. संतो द्वारा बताये भागवत धर्म में निष्ठा करना।

4. रसिकों से तृषातुर होकर श्रीप्रियाप्रियतम की मधुरकथा सुनना।

5. कथा से श्रीप्रिया प्रियतम के चरणों में अनुराग का अंकुर हृदय में उत्पन्न होना।

6. युगलरूप के दर्शन की कामना से बारबार उनका चिंतन होना।

7. हृदय में प्रेम की वृद्धि, चित्त का द्रवीभूत होना।

8. रूप, लीला के ध्यान व गुणगान में मगन होना।

9. ध्यान – चिंतन में स्थिरता व दृढ़ता। किसी भी प्रकार की स्थिति आने पर ध्यान – चिंतन में शिथिलता न आना।

10. ध्यान में दृढ़ता होने पर श्रीप्रिया प्रियतम का साक्षात्कार होना व रूप, लीला रस सागर में गोते लगाना। यही पराभक्ति प्राप्ति का मार्ग है।

इहि विधि पावौ सर्वदा, सकल सुखन को सार।
अष्टयाम निरखत रहो, प्रियतम नित्य विहार।।
या सुख को सोइ जानहि, जाहि युगल अपनाय।
रसिकन की किरपा बिना, भेद कहाँ ते पाय।।
इहि ते पर कछु सुख नहीं,रसिकन कह्यो विचार।
सर्वोपरि सखि भाव सों, होय पान सुख – सार।।

इति शुभम्

यह नित्य वृंदावन करोड़ों – करोड़ों भगवद् धामों से विलक्षण है। इस धाम की कोई समता नहीं कर सकता। यह धाम अद्भुत, चिद्घन, व्यापक तथा सब लोकों से ऊपर, सर्वलोक सिरमौर है। इसकी शक्ति अचिंत्य है। मन, बुद्धि व इन्द्रियों से अगोचर है। मायातीत, ज्ञानातीत, कालातीत यह वृंदावन दुर्लभातिदुर्लभ है।

इस गुणातीत, कालातीत, सर्वसुन्दर तथा प्रेमानन्द स्वरूप रसधाम वृन्दावन में पराभक्ति बिना कोई पहुँच नहीं सकता। पराभक्ति एकमात्र कृपा से ही सम्भव है। यह कृपा शरणागत दीन भक्तों पर ही होती है।

ज्ञान द्वारा मुक्ति सुलभ है, धर्म अर्थ और काम यज्ञादि अनुष्ठान करने से मिल सकते हैं परंतु हजारों प्रकार के साधन करने से भी पराभक्ति (परम प्रेम) अत्यंत दुर्लभ है। प्रेम बिना नित्य वृंदावन में प्रवेश नहीं हो सकता। यह प्रेम अत्यंत दुर्लभ होने पर भी शरणागत दीन भक्त को बिना किसी प्रयास के ऐसे प्राप्त हो जाता है जैसे माता – पिता की सम्पत्ति पुत्र को सहज ही प्राप्त हो जाती है। सखी! तू बहुत भाग्यशाली है। तुम पर कृपा हुई है। इसलिए तू यहाँ पहुँच गई है।

– इसी पुस्तक से